Subject : लोक प्रशासन	
Course Code **:**	Author **:**
Lesson No. **: 1**	Vetter **:**
लोक प्रशासन अर्थ, प्रकृति, कार्यक्षेत्र, आयाम और अनुशासन का महत्व	

अध्याय – 1 लोक प्रशासन अर्थ, प्रकृति, कार्यक्षेत्र, आयाम और अनुशासन का महत्व

1.1 अधिगम उद्देश्य **(Learning Objectives)**

1.2. प्रस्तावना **(Introduction)**

1.3. अध्ययन के मुख्य बिन्दु **(Main Point of Text)**

- **1.3.1.** लोक प्रशासन की परिभाषाएँ
- **1.3.2.** लोक प्रशासन की प्रकृति
- **1.3.3.** लोक प्रशासन का क्षेत्र

1.4. अध्याय के आगे का प्रमुख भाग **(Further Main Body of Text)**

- **1.4.1.** लोक प्रशासन में आयाम और अनुशासन का महत्व
- **1.4.2.** अध्ययन के विषय के रूप में लोक प्रशासन का विकास
- **1.4.3.** लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में समानताएं
- **1.4.4.** लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में असमानताएं

1.5. अपनी प्रगति जांचे **(Check your progress)**

1.6. सारांश **(Summary)**

1.7. सूचक शब्द **(Key Words)**

1.8. स्वयं मूल्यांकन हेतु प्रश्न **(Self Assignment Questions)**

1.9. अपनी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर **(Answer for Check your progress)**

1.10. सन्दर्भ ग्रन्थ **(Reference)**

1.1 अधिगम उद्देश्य (Learning Objectives)

इस अध्याय में आप निम्न विषयों के बारे में अध्ययन कर पाएंगे :

- लोक प्रशासन का अर्थ, परिभाषा तथा अवधारणा
- लोक प्रशासन की प्रकृति
- लोक प्रशासन का क्षेत्र
- लोक प्रशासन का विकास
- लोक प्रशासन में समानता तथा असमानता
- लोक प्रशासन का महत्व

1.2. प्रस्तावना (Introduction)

लोक प्रशासन एक संयुक्त शब्द है जो दो शब्दों लोक (Public) और प्रशासन (Administration) से मिलकर बना है। 'लोक' शब्द 'सार्वजनिकता' का सूचक है तथा यह आम आदमी के लिए प्रशासन का मार्ग प्रशस्त करता है। 'लोक' (Public) शब्द का प्रयोग 'सरकारी संस्था' या 'गवर्नमेंट' के प्रशासनिक कार्यों को परिलक्षित करता है। इसे जनप्रशासन, सार्वजनिक प्रशासन या सरकारी प्रशासन भी कहा जाता है। लोक शब्द का प्रयोग इस विषय को सरकार के प्रशासनिक क्रियाकलापों तक सीमित कर देता है, क्योंकि राज्य ही एकमात्र ऐसा संगठन है जिसमें देश के अन्दर रहने वाले समस्त व्यक्ति आ जाते हैं। प्रशासन का अर्थ ''राज्य के कार्यों को पूरा करना होता है।'' अतः लोक प्रशासन से अर्थ मानवीय एवं भौतिक स्त्रोतों के शासन द्वारा निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक संगठन से है। लोक या जन शब्द सार्वजनिकता का सूचक है तथा यह आम नागरिक के लिये प्रशासन का द्वार खोलता है। अर्थात् जो प्रशासन आम लोगों के लिये हो, वह लोक प्रशासन है। प्रशासन व्यक्तिगत और सार्वजनिक हो सकता है लेकिन लोक प्रशासन कभी भी व्यक्तिगत नहीं हो सकता है। सरकार द्वारा सम्पन्न क्रियाएँ व्यापक, सार्वजनिक और लोक–हित की होती है इसलिये सरकारी कार्यों के प्रशासन को लोक प्रशासन कहा जाता है।

सरकार के तीन अंग होते हैं : विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका। क्या लोक प्रशासन में सरकार के तीनों अंगों का अध्ययन किया जाता चाहिए ? इस प्रश्न पर विचारकों में मतभेद है। इस मतभेद के कारण विद्वानों ने लोक प्रशासन की विस्तृत एवं

संकुचित परिभाषाएँ की हैं। व्हाइट, वुडरो विल्सन, फिफ्नर, डिमॉक आदि लोक प्रशासन को विस्तृत अर्थ में स्वीकार करते हैं। गुलिक, साइमन, विलोबी, फेयोल आदि इसके संकुचित मत को मानते हैं।

1.3. अध्ययन के मुख्य बिन्दु (Main Point of Text)

1.3.1. लोक प्रशासन का अर्थ : एल. डी. व्हाइट के शब्दों में, ''लोक प्रशासन में वे सभी कार्य आ जाते हैं जिनका उद्देश्य सार्वजनिक नीतियों को पूरा करना या लागू करना होता है।''

वुडरो विल्सन के अनुसार, ''कानून को विस्तृत एवं क्रमबद्ध रूप से क्रियान्वित करने का नाम ही लोक प्रशासन है। कानून को क्रियान्वित करने की प्रत्येक क्रिया एक प्रशासकीय क्रिया है।''

फिफ्नर के अनुसार, ''लोक प्रशासन का अर्थ जनता का सहयोग प्राप्त करके सरकार के कार्यों का संचालन करना है। चाहे वह स्वास्थ्य प्रयोगशाला में एक्स–रे मशीन का संचालन हो या टकसाल में सिक्के ढालना हो।''

हर्बर्ट साइमन के शब्दों में, ''साधारण प्रयोग में लोक प्रशासन का अर्थ राष्ट्रीय, प्रान्तीय तथा स्थानीय सरकारों की कार्यपालिक शाखाओं की क्रिया से है।''

लूथर गुलिक के अनुसार, ''सामान्यतः लोक प्रशासन, प्रशासन विज्ञान का वह भाग है जो शासन से विशेषकर इसके कार्यपालिका पक्ष से सम्बन्धित है जहाँ सरकार का कार्य किया जाता है, यद्यपि विधायिका एवं न्यायपालिका से सम्बन्धित समस्याएँ भी स्पष्ट रूप से प्रशासकीय समस्याएँ ही है।''

1.3.2. लोक प्रशासन की प्रकृति : प्रशासन की प्रकृति के विश्लेषण के सम्बन्ध में दो दृष्टिकोण हैं। इन्हें एकीकृत (Intergral) तथा प्रबन्धकीय (Managerial) दृष्टिकोण कह सकते हैं।

एकीकृत दृष्टिकोण – एकीकृत दृष्टिकोण के समर्थकों के अनुसार निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति के लिये सम्पादित की जाने वाली प्रक्रियाओं का समग्रीकरण या योग ही प्रशासन है, चाहे वे क्रियाएँ लेखन, प्रबन्धन का तकनीक सम्बन्धी ही क्यों न हों। इस प्रकार, उपक्रम अथवा उद्यम विशेष में कार्यरत सन्देशवाहक, फोरमैन, चौकीदार, सफाई कर्मचारी तथा शासन के सचिवों एवं प्रबन्धकों तक के कार्यों को प्रशासन की संज्ञा देते हैं। **फिफनर, एफ.**

एम. मार्क्स, एल.डी. व्हाइट आदि लोक प्रशासन की प्रकृति के सम्बन्ध में एकीकृत दृष्टिकोण के समर्थक हैं। इस दृष्टिकोण में उपक्रम में कार्यरत छोटे से लेकर बड़े अधिकारियों तक के कार्यों को प्रशासन का भाग माना जाता है। व्हाइट इसी दृष्टिकोण के समर्थक हैं। उनके अनुसार, ''लोक प्रशासन उन सभी कृत्यों से मिलकर बना है जिनका प्रयोजन लोक नीति को पूरा करना या उसे लागू करना होता है। इसमें अनेक क्षेत्रों की विशेष क्रियाएँ आ जाती हैं, जैसे – पत्र–वितरण, सार्वजनिक भूमि का विक्रय, सन्धि वार्ता, घायल कर्मचारी को क्षति–पूर्ति देना, संक्रामक रोग से बीमार बच्चों को अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क से रोकना, उद्यान से कूड़ा–करकट हटाना, प्लूटोनियम का निर्माण, तथा अणुशक्ति नीति से सम्बन्धित समस्त क्रियाएँ।'' वास्तव में, लोक प्रशासन की प्रकृति जनसेवा से अधिक सम्बद्ध है अतः एकीकृत दृष्टिकोण अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है।

प्रबन्धकीय दृष्टिकोण – दूसरा प्रबन्धकीय दृष्टिकोण जो संकुचित है, केवल उन्हीं लोगों के कार्यों को प्रशासन मानता है, जो किसी उपक्रम सम्बन्धी केवल प्रबन्धकीय कार्यों को सम्पन्न करते हैं। प्रबन्धकीय कार्य का लक्ष्य उपक्रम की सभी संक्रियाओं का एकीकरण, नियन्त्रण तथा समन्वय करना होता है। यह प्रशासन का प्रबन्धकीय दृष्टिकोण है। लूथर गलिक, साइमन, स्मिथबर्ग तथा थॉमसन इस दृष्टिकोण के समर्थक हैं। उनके मतानुसार ''प्रशासन शब्द अपने संकुचित अर्थ में आचरण के उन आदर्शों को प्रकट करने के लिये प्रयोग किया जाता है जो अनेक प्रकार के सहयोगी समूहों में समान रूप से पाये जाते हैं; और जो न तो उस लक्ष्य विशेष पर ही आधारित है जिसकी प्राप्ति के लिए वे सहयोग कर रहे हैं और न उन विशेष औद्योगिक रीतियों पर ही अवलम्बित है जो उन लक्ष्यों हेतु प्रयोग की जाती है।'' **लूथर गुलिक** लिखते हैं : ''प्रशासन का सम्बन्ध कार्य पूरा किये जाने और निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति से है।''

उक्त दोनों दृष्टिकोणों में से किसी की भी पूर्णतः उपेक्षा नहीं की जा सकती, विशेषकर आजकल जब सामान्य प्रशासक व विशेषज्ञ के बीच काफी तनातनी चल रही है। विशेषज्ञों का कहना है कि प्रशासन सन्दर्भात्मक है, प्रशासन किसी चीज के सन्दर्भ में ही अर्थपूर्ण है। यह शून्य में नहीं विराजता। इसी विचार को आगे बढ़ाकर वे कहते हैं कि बिना विषय–ज्ञान के प्रशासन नहीं चल सकता। इस विचार में कुछ सार तो है ही।

प्रबन्धात्मक दृष्टिकोण के अनुसार प्रशासन अपने आप में एक भिन्न तथा पृथक् क्रिया है। जो इन क्रियाओं को जानता है वह प्रशासन कर सकता है, विषय चाहे शिक्षा हो या

कृषि। भारत में भारतीय प्रशासनिक सेवा (I.A.S.) के निर्माण के पीछे यही आधार है। सच तो यह है, प्रशासन का ठीक अर्थ उस प्रसंग पर निर्भर करता है जिस सन्दर्भ में शब्द का प्रयोग किया जाता है। **डिमॉक, डिमॉक** तथा **कोइंग** ने सारांश में कहा है : ''अध्ययन विषय के रूप में प्रशासन उन सरकारी प्रयत्नों के प्रत्येक पहलू की परीक्षा करता है जो कानून तथा लोक–नीति को क्रियान्वित करने हेतु किये जाते हैं। एक प्रक्रिया के रूप में इसमें वे सभी प्रयत्न आ जाते हैं जो किसी संस्थान में अधिकार–क्षेत्र प्राप्त करने से लेकर अन्तिम ईंट रखने तक उठाये जाते हैं (और कार्यक्रमों का निर्माण करने वाले अभिकरण का प्रमुख भाग भी इसमें सम्मिलित होता है) तथा व्यवसाय के रूप में प्रशासन किसी भी सार्वजनिक संस्थान के क्रियाकलापों का संगठन तथा संचालन करता है।

1.4. अध्याय के आगे का मुख्य भाग (Further Main Body of Text)

1.4.1. लोक प्रशासन का कार्यक्षेत्र : लोक प्रशासन के क्षेत्र के सम्बन्ध में भी लोक प्रशासन की परिभाषा एवं प्रकृति की तरह ही विद्वानों में एक मतैक्यता का अभाव है। लोक प्रशासन चूँकि एक गतिशील (Dynamic) और विकासशील (Developing) विषय है, इसलिये इसे विद्वानों ने अलग–अलग दृष्टिकोणों से देखा और समझा है। राज्यों को दिन–प्रतिदिन नयी–नयी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। इन समस्याओं से निबटने के लिए राज्य नये–नये तरीके एवं तकनीकें प्रयोग में ला रहे हैं। प्रत्येक नया तरीका एवं नयी तकनीक राज्य का कार्य–क्षेत्र बढ़ाते हैं और राज्य पर बढ़ता हुआ प्रत्येक कार्य अन्ततः लोक प्रशासन का क्षेत्र विस्तार है। अतः लोक प्रशासन को किसी निश्चित कार्यक्षेत्र में सीमित नहीं कर सकते हैं।

लोक प्रशासन को केवल सरकार या कार्यपालिका से जोड़ देना संकीर्ण विचार होगा। कई विद्वान यह विचार मानते हैं। आज सरकार अपने क्षेत्र में तो काम करती ही है, इसके अलावा वह और क्षेत्रों में भी अपना हित या हाथ रखती है। सहकारी समितियाँ क्षेत्र के बाहर हैं पर इनमें भी करदाता का पैसा आता है और इसलिए लोक प्रशासन की परिधि के अन्दर आ जाती है। इसी तर्क के आधार पर विश्वविद्यालय तथा शैक्षिक संस्थाएँ भी लोक प्रशासन के अन्दर आती हैं। आज बड़े–बड़े प्राइवेट उद्योगों में भी अधिकांश धन जनता का ही है। अतः लोक प्रशासन इन बड़े–बड़े उद्योगों को भी अपने क्षेत्र से बाहर नहीं रख सकता है। संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि लोक प्रशासन का क्षेत्र उन सभी सार्वजनिक कार्यों व क्रियाओं तक व्याप्त है जो एक समाज में किये जाते हैं। ध्यान में रखने

की बात यह है कि कार्य व क्रियाएँ सार्वजनिक हों, केवल सरकारी होना ही जरूरी नहीं है। इस समय बहुमत की भावना यही है कि लोक प्रशासन कार्यपालिका का अध्ययन करता है।

लोक प्रशासन के क्षेत्र को समझने के लिये निम्नलिखित दृष्टिकोणों के विषय में जानना आवश्यक है :–

- व्यापक दृष्टिकोण
- संकुचित दृष्टिकोण
- पोस्डकोर्ब दृष्टिकोण
- लोक–कल्याणकारी दृष्टिकोण
- पोकोक दृष्टिकोण
- आधुनिक दृष्टिकोण

लोक प्रशासन के क्षेत्र का व्यापक दृष्टिकोण – व्यापक दृष्टिकोण के विचारक यह मानते हैं कि लोक प्रशासन के क्षेत्र के अन्तर्गत सरकार के तीनों अंगों – व्यवस्थापिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका – द्वारा सम्पादित कार्यों का अध्ययन किया जाता है। इनके अनुसार लोक प्रशासन के क्षेत्र में वे सभी क्रियाकलाप आते हैं जिनका प्रयोजन लोक–नीति को पूरा करना या उसे लागू करना होता है। विलोबी, मार्क्स, व्हाइट तथा फेलिक्स नीग्रो इस विचार के समर्थक है। **एल.डी. व्हाइट** और **मार्क्स** ने लोक प्रशासन के कार्यक्षेत्र में उन सभी गतिविधियों को सम्मिलित किया है जो लोकनीति के क्रियान्वयन से सम्बन्धित है। इस सम्बन्ध में **नीग्रो** की व्याख्या अधिक व्यापक और विस्तृत है क्योंकि उसने अन्य बातों के अलावा लोक प्रशासन तथा सामाजिक–राजनीतिक प्रणाली के पारस्परिक सम्बन्धों को भी सम्मिलित कर लिया है। इस दृष्टिकोण के अनुसार कार्यपालिका के समस्त कार्यों के अतिरिक्त विधायिका को उसके कार्य संचालन, जैसे – कानूनों का प्रारूप तैयार करना, सदन–संचालन करना आदि कार्य तथा न्यायपालिका के लिए आवश्यक व्यवस्थाएँ करना, जैसे – वाद / याचिका दायर करना, साक्ष्य तथा गवाह उपलब्ध कराना आदि कार्यों को लोक प्रशासन के द्वारा ही किया जा सकता है। इस प्रकार इस दृष्टिकोण के अनुसार डाक–तार विभाग में पत्रों को छाँटने और बाँटने के काम से लेकर विभाग की नीति और प्रबन्ध के उच्चतम सभी कार्य प्रशासन में आ जाते हैं।

लोक प्रशासन के क्षेत्र का संकुचित दृष्टिकोण – संकुचित दृष्टिकोण को मानने वाले विचारकों के अनुसार लोक प्रशासन का सम्बन्ध शासन की केवल कार्यपालिका शाखा से है। इस दृष्टिकोण के समर्थक प्रशासन में संगठन के सभी कार्यों को सम्मिलित नहीं करते हैं, केवल उन्हीं कार्यों को सम्मिलित करते हैं जिनका सम्बन्ध प्रबन्ध की विधियों, तकनीकी तथा पद्धतियों से होता है और जो सभी संगठनों में सामान्य रूप से पाये जाते हैं। इस विचारधारा के समर्थकों में **हरबर्ट साइमन** और **लूथर गुलिक** विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। **साइमन** ने कहा है कि ''लोक प्रशासन से अभिप्राय उन क्रियाओं से है जो केन्द्र, राज्य तथा स्थानीय सरकारों की कार्यपालिका शाखा द्वारा सम्पादित की जाती है।'' **लूथर गुलिक** के शब्दों में, ''लोक प्रशासन का विशेष सम्बन्ध कार्यपालिका से है।'' **सियोन** आदि विचारकों का मत है कि लोक प्रशासन का कार्य क्षेत्र निष्पादन अथवा प्रशासकीय शाखा के क्रियाकलापों के अनुसार होना चाहिए। इस दृष्टिकोण के अनुसार लोक प्रशासन के कार्यक्षेत्र में केवल कार्यपालिका के संगठन, उसकी कार्य पद्धति तथा कार्य–प्रणाली का ही अध्ययन किया जाता है।

सारांश में इस दृष्टिकोण अनुसार लोक प्रशासन के क्षेत्र में निम्नांकित विषय सम्मिलित किये जा सकते हैं :–

- लोक प्रशासन क्रियाशील कार्यपालिका (Active Executive) का अध्ययन करता है।
- लोक प्रशासन के अन्तर्गत सामान्य प्रशासन की सभी समस्याओं का अध्ययन होता है।
- इसके कार्यक्षेत्र में संगठन सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन भी किया जाता है।
- लोक प्रशासन की परिधि में लोक सेवाओं एवं अन्य सेविवर्ग की समस्याओं जैसे – उनकी भर्ती, प्रशिक्षण, वेतन–भत्ते, अनुशासन, सेवाओं की दशा आदि का भी अध्ययन किया जाता है।
- लोक प्रशासन के कार्यक्षेत्र में वित्तीय समस्याएँ भी आती है।
- लोक प्रशासन में प्रशासकों के उत्तरदायित्वों का भी अध्ययन किया जाता है।

लोक प्रशासन के क्षेत्र को पोस्डकोर्ब दृष्टिकोण – लोक प्रशासन के कार्य–क्षेत्र के सम्बन्ध में 'POSDCORB' विचार **लूथर गुलिक** की देन है। 'पोस्डकोर्ब' शब्द अंग्रेजी के साथ शब्दों के प्रथम अक्षरों से मिलकर बना है। ये शब्द निम्नवत् हैं :–

P = Planning (योजना बनाना)

O = Organising (संगठन बनाना)

S = Staffing (कर्मचारियों की व्यवस्था करना)

D = Directing (निर्देशन करना)

Co = Co-ordinating (समन्वय करना)

R = Reporting (प्रतिवेदन देना)

B = Budgeting (बजट तैयार करना)

इस शब्दों की व्याख्या इस प्रकार है :–

- **योजना बनाना –** नियोजन का अर्थ है : कार्य करने से पूर्व उसकी रूपरेखा का निर्धारण करना। कोई कार्य करने से पहले यह आवश्यक है कि उसके सम्बन्ध में एक विस्तृत योजना बनाकर इस बात पर विचार कर लिया जाय कि किये जाने वाले कार्य का उद्देश्य क्या है? इसके सम्बन्ध में अपनायी जाने वाली नीति क्या होगी? इनकी पूर्ति के साधन क्या होंगे? इन साधनों की पूर्ति किस प्रकार की जायेगी? इस प्रकार योजना के अन्तर्गत उन समस्त बातों की रूपरेखा के सम्बन्ध में व्यापक रूप से विचार किया जाता है जिनसे निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति सरल हो जाती है। आजकल योजना की भूमिका का विशेष महत्व है। इस प्रकार लोक प्रशासन के अन्तर्गत योजना बनाकर लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है।

➢ **संगठन बनाना –** संगठन से तात्पर्य एक ऐसी व्यवस्था से है जिसकी सहायता से प्रशासकीय कार्यों का विभाजन इस ढंग से किया जाता है कि समस्त कार्यों को उचित प्रकार से किया जा सके। निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार के संगठनों का निर्माण किया जाता है। प्रशासकीय चार्ट, संगठन के सिद्धान्त एवं कार्यों का बँटवारा इन तीनों के बीच सन्तुलन बनाये रखना संगठन का प्रमुख कार्य है।

➢ **कर्मचारियों की व्यवस्था करना –** कोई भी अच्छी योजना तथा अच्छे संगठन की रचना का तब तक कोई महत्व नहीं रहता, जब तक उसके लोक सेवक अपने कर्त्तव्यों का

पालन कुशलतापूर्वक नहीं करते। अतः संगठन को चलाने के लिए कुशल, योग्य तथा ईमानदार लोक सेवकों की आवश्यकता होती है। संक्षेप में, लोक प्रशासन का आधार कुशल लोक सेवक होते हैं। लोक सेवकों की भर्ती, चयन, प्रशिक्षण, पदोन्नति एवं कार्य करने की अनुकूल परिस्थितियों आदि का अध्ययन लोक प्रशाासन के अन्तर्गत करते हैं।

➢ **निर्देशन प्रदान करना –** लोक प्रशासन का कार्य प्रशासन सम्बन्धी कार्यों का विश्लेषण करके निर्णय लेना और निर्णय के अनुसार कर्मचारियों को निर्देष देना है। उचित निर्देशन के अभाव में प्रशासन अपने लक्ष्यों से भटक सकता है। अतः निर्देशन स्पष्ट तथा लिखित होने चाहिए। निर्देशन का कार्य मुख्य कार्यपालिका अथवा विभागाध्यक्ष द्वारा किया जाता है। उनके निर्देशन का मुख्य उद्देश्य यह होता है कि उनके अधीनस्थ समस्त कर्मचारी ठीक ढंग से कार्य करें ताकि निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति न्यूनतम समय में की जा सके।

➢ **समन्वय स्थापित करना –** समन्वय का तात्पर्य है : प्रशासन के विभिन्न कार्यों में तालमेल स्थापित करना जिससे कुशलतापूर्वक कार्य होता रहे। प्रशासकीय कार्यों के सम्पादन में समन्वय एक आवश्यक तत्व है। कार्यों का विभाजन कर उचित कार्य उचित व्यक्ति को देना और उसमें समन्वय करना एक बड़ी समस्या है। समन्वय के द्वारा कार्यों के दोहराव को भी रोका जाता है।

➢ **प्रतिवेदन देना –** लोकतान्त्रिक शासन–व्यवस्था में प्रशासन जनता के प्रति उत्तरदायी होता है। जनता की लोकनीतियों को पूर्ण करना प्रशासन का प्रमुख लक्ष्य होता है। अतः इसके लिए प्रशासन जनता के समक्ष प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है। इस प्रकार प्रशासकीय कार्यों की प्रगति से सम्बन्धित सूचनाएँ उन लोगों को प्रदान की जाती हैं जिनके प्रति संगठन उत्तरदायी है। प्रशासन की उपलब्धियों, कमियों तथा समस्याओं के निरीक्षण के सम्बन्ध में प्रतिवेदन देकर ही हम प्रशासन को उत्तरदायी बना सकते हैं।

➢ **बजट तैयार करना –** प्रशासन के लिए वित्त ही प्राण है। सभी प्रशासकीय कार्यों के लिए धन की आवश्यकता होती है। इस सम्बन्ध में **कौटिल्य** ने सत्य ही कहा है कि ''सभी उद्यम वित्त पर निर्भर हैं। इसलिए कोषागार के प्रति सर्वाधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।'' इस प्रकार बिना समुचित वित्त की व्यवस्था के लोक प्रशासन शिथिल हो जायेगा।

आय–व्यय को लेखा–जोखा तैयार करना, वित्तीय योजनाओं का निर्माण करना, करारोपण, व्यय करना और अंकेक्षण के माध्यम से नियन्त्रण रखना इसके अन्तर्गत सम्मिलित हैं।

लोक प्रशासन के क्षेत्र का लोक–कल्याणकारी दृष्टिकोण – इस दृष्टिकोण को आदर्शवादी दृष्टिकोण भी कहा जाता है। इस दृष्टिकोण को मानने वाले राज्य और प्रशासन के बीच अन्तर नहीं मानते। उनका विचार है कि राज्य एक लोक कल्याणकारी अवधारणा है, अतः राज्य और प्रशासन दोनों ही लोक–कल्याणकारी हैं तथा दोनों का लक्ष्य एक ही है – सब का जनहित। इस प्रकार इस दृष्टिकोण के अनुसार लोक प्रशासन का क्षेत्र जनता के हित में किये जाने वाले समस्त कार्यों तक फैला हुआ है। इस मत को मानने वालों में **एल. डी. व्हाइट** प्रमुख हैं, जो लोक प्रशासन को एक 'अच्छी जिन्दगी' के लिए किया जाने वाला कार्य मानते हैं। **येझिकल डोर** और **मर्सन** भी इसी दृष्टिकोण के समर्थक हैं।

लोक प्रशासन के क्षेत्र का 'पोकोक' दृष्टिकोण – हेनरी फेयोल के अनुसार लोक प्रशासन का क्षेत्र निम्न कार्यों तक है :–

P = Planning (नियोजन करना)

O = Organising (संगठन बनाना)

C = Commanding (आदेश देना)

Co = Co-ordinating (समन्वय करना)

C = Controling (नियन्त्रण रखना)

पर्सी मैकक्वीन ने तीन तत्वों को लोक प्रशासन के क्षेत्र में सम्मिलित किया है जो निम्न है – मनुष्य, भौतिक संसाधन तथा विधियाँ। दूसरी तरफ **विलोबी** ने पाँच विषयों को आवश्यक बताया है; यथा – 1. उच्च प्रशासनिक नियन्त्रण एवं निर्देशन, 2. संगठन, 3. कार्मिक प्रबन्ध, 4. भौतिक संसाधन तथा 5. वित्तीय संसाधन। **कूटज** तथा **ओ' डोनेल** ने हेनरी फेयोल की भांति ही लोक प्रशासन के क्षेत्र को POSLC अर्थात् Planning (नियोजन करना), Organising (संगठन करना), Staffing (कार्मिकों की व्यवस्था करना), Leading (नेतृत्व करना) तथा Controlling (नियन्त्रण रखना) माना है। **स्टीफन रोबिन्स** ने लोक प्रशाासन के क्षेत्र में POLE (पोल) शब्द के रूप में स्पष्ट किया है जिसका अर्थ है : Planning, Organising, Leading तथा Evaluating । जबकि कास्ट और रोजनविग ने इसे केवल POC (पोक) अर्थात् Planning, Organising तथा Controlling के रूप में माना है। लोक

प्रशासन को POMC (Planning, Organising, Motivating तथा Controlling) के रूप में मानने वाले विद्वान् **हर्से** एवं **बलैन्चाई** हुए हैं।

लोक प्रशासन के क्षेत्र का आधुनिक दृष्टिकोण – साइमन और **गुलिक** के विचार को परम्परागत दृष्टिकोण की संज्ञा दी जाती है। पिछल कुछ वर्षों में कुछ विद्वानों ने लोक प्रशासन की संकीर्णता और अधूरेपन को दूर करके इसे अधिक व्यापक तथा सामयिक बनाने का प्रयास किया है। फलस्वरूप इसका स्वरूप विकसित हुआ है। **डॉ0 एम.पी. शर्मा** के अनुसार, ''सभी प्रकार की सार्वजनिक सत्ता जो प्रशासन का कार्य करती है, चाहे वह राष्ट्रीय, क्षेत्रीय या स्थानीय स्तर पर हो और चाहे वह कार्यवाहक हो, चाहे सलाहकार, उसका ढाँचा, संगठन तथा कार्यरीतियाँ, इनमें न केवल केन्द्रीय विभाग तथा स्थानीय सरकारें सम्मिलित होती हैं, अपितु मन्त्रालयों से बाहर संगठन, सार्वजनिक मण्डल तथा निगम भीं इसके अन्तर्गत आते हैं। प्रशासनिक अधिकारियों के कार्यों में कार्यवाहक, वैधानिक तथा न्यायिक कार्य भी सम्मिलित होते हैं और साथ ही विभिन्न कार्यरीतियाँ जो विभिन्न प्रकार के कार्यों को करने के अनुकूल हों, इसमें आ जाती है।'' लोक प्रशासन के क्षेत्र के अन्तर्गत नियन्त्रण का अध्ययन भी आवश्यक है; जैसे – संसद तथा मन्त्रिमण्डल का बाह्य नियन्त्रण, स्थानीय सरकार पर राज्य सरकार तथा केन्द्रीय नियन्त्रण, सरकारी निगमों आदि पर सरकार अथवा मन्त्री का नियन्त्रण, प्रशासनिक मशीन में आन्तरिक नियन्त्रण आदि।

1.4.2. लोक प्रशासन में आयाम और अनुशासन का महत्व : आधुनिक युग में लोक प्रशासन का महत्व इतना अधिक बढ़ गया है कि यह प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को जन्म से लेकर मृत्यु तक प्रभावित करता है। लोक प्रशासन का प्रभाव तथा महत्त्व विश्व के प्रत्येक देश में देखने को मिलता है। वस्तुतः विश्व की कोई भी सरकार प्रशासन के बिना कार्य नहीं कर सकती है। सरकार का स्वरूप किसी भी प्रकार का क्यों न हो, प्रशासन का महत्व कम नहीं होता। अतः प्रत्येक प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था के लिये प्रशासन अनिवार्य है। आधुनिक राज्य के समाज की जटिलता, विकास एवं प्रगति को आगे बढ़ाने के लिये, सुचारू रूप से संचालन के लिये तथा मार्ग में आने वाली समस्याओं से जूझने के लिये सुदृढ़ लोक प्रशासन आवश्यक है। यह सभ्य जीवन का रक्षक होने के साथ–साथ परिवर्तन एवं सुधार का महान साधन भी है। लोक प्रशासन ने केवल एक सैद्धान्तिक विषय है बल्कि सभ्य समाजों में व्यक्ति तथा सरकार के बीच औपचारिक सम्बन्धों को स्पष्ट करने वाला आवश्यक ज्ञान है। लोक प्रशासन के महत्व के सम्बन्ध में **चार्ल्स ए.**

बीयर्ड के शब्द महत्वपूर्ण हैं, ''प्रशासन के विषय से अधिक महत्वपूर्ण अन्य कोई विषय नहीं हो सकता है। मेरे विचार से शासन तथा हमारी सभ्यता का भविष्य इसी बात पर निर्भर करता है कि सभ्य समाज के कार्यों की पूर्ति के लिये प्रशासन का दार्शनिक, वैज्ञानिक तथा व्यावहारिक स्वरूप कितना विकसित होता है।''[23] लोक प्रशासन का महत्व जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हस्तक्षेप कर चुका है, लोक प्रशासन ही आधुनिक सभ्यताओं, संस्कृतियों तथा मानव सहित समस्त जीव जगत् का भविष्य है।

लोक प्रशासन के महत्त्व को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से समझा जा सकता है:

➢ **प्रशासन एक उपकरण के रूप में –** किसी भी सरकार का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य कुशल प्रशासन करना है। देश में शान्ति–व्यवस्था, कानून की स्थापना तथा नागरिकों को सुरक्षा प्रदान करना प्रशासन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य है। सभ्यता के प्रारम्भिक दिनों में लोक प्रशासन द्वारा सम्भवतः ये कार्य ही निष्पादित किये जाते रहे होंगे। परन्तु आज की परिस्थितियाँ बदल गयी हैं। प्रशासन का कार्य जटिलताओं से भरा हुआ है। औद्योगीकरण, आधुनिकीकरण तथा पुनर्जागृति की लहर समस्त विश्व में व्याप्त हो गयी है। व्यक्ति के जीवन के विभिन्न पहलुओं में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। व्यक्ति की अपेक्षाएँ, महत्त्वाकांक्षाएँ और आवश्यकताएँ बढ़ी हैं। विकासशील देशों की जनता के आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक स्तर को ऊपर लाने की समस्याएँ मुँहबाये खड़ी हैं। आधुनिक समाज की इनकी आशाओं एवं आवश्यकताओं को पूरा करके जीवन को सुखमय बनाना, प्रशासन का चुनौतीपूर्ण कार्य है। इस प्रकार आधुनिक राज्य में प्रशासकीय भूमिका इतनी महत्वपूर्ण हो गयी है कि यदि प्रशासन अपना कार्य करना बन्द कर दे तो पूर्ण समाज बालू की दीवार की भांति ढह जायेगा। अतः कुशल प्रशासन के उपकरण के रूप में लोक प्रशासन का महत्व निरन्तर बढ़ता जा रहा है।

➢ **सभ्यता एवं संस्कृति का रक्षक –** आज के युग में लोक प्रशासन न केवल शासन व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु है, अपितु वह हमारी आकांक्षाओं एवं आशाओं का भी हृदय–स्थल है। आज हमें सभ्यता, संस्कृति एवं कला का जो निखरा हुआ रूप संसार में दृष्टिगोचर हो रहा है, वह प्रशासन की अभूतपूर्व देन है। इसलिये प्रत्येक राष्ट्र की सांस्कृतिक विविधता तथा विरासत का संरक्षण प्रशासन का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व बन गया है। सांस्कृतिक

अतिक्रमण, आक्रमण तथा पतन की ओर अग्रसर गौरवशाली मूल्यों के संरक्षण में लोक प्रशासन की बढ़ती हुई भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। ये कारण इसकी महत्ता और आवश्यकता के आधार हैं। इस सन्दर्भ में **प्रो. डोनहम** का कथन सत्य प्रतीत होता है कि, ''यदि हमारी सभ्यता असफल होती है तो ऐसा मुख्यतया प्रशासन के पतन के कारण ही होगा।''

➢ **विकास एवं परिवर्तन के रूप में –** विकास एवं परिवर्तन के उपकरण के रूप में लोक प्रशासन की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसलिये यह विकास प्रशासन का पर्याय बन गया है। अब लोक प्रशासन का कार्यक्षेत्र विस्तृत हो गया है। इसकी प्रकृति परम्परागत प्रशासन से हटकर लक्ष्योन्मुखी, परिणामोन्मुखी, ग्राहकोन्मुखी तथा परिवर्तनोन्मुखी हो गयी है। किसी भी देश का प्रशासन वहाँ की जनता की बुद्धिमता या विवेकशीलता का दर्पण होता है जिसमें गुण, इच्छा तथा आकांक्षाएँ सम्मिलित रहती हैं। जब देश विकास के मार्ग पर आगे बढ़ता है तब लोक प्रशासन मार्गदर्शक का कार्य करता है।

विकास प्रशासन, प्रशासन को प्रगतिशील, राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक लक्ष्यों की ओर ले जाता है ताकि जनता के कल्याण, विकास एवं सुरक्षा के लक्ष्य प्राप्त किये जा सकें। देश का चहुँमुखी विकास, विकसित लोक प्रशासन के द्वारा ही सम्भव है। देश का व्यवस्थित एवं नियोजित ढंग से आर्थिक एवं सामाजिक विकास लोक प्रशासन के द्वारा ही सम्भव है। साथ में देश के विकास और प्रगति को आगे बढ़ाने के लिये, सुचारू रूप से संचालन के लिये तथा इनके मार्ग में आने वाली समस्याओं से जूझने के लिये लोक प्रशासन अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार विकास एवं परिवर्तन का लोक प्रशासन महत्वपूर्ण उपकरण है।

➢ **अध्ययन विषय के रूप में –** आज लोक प्रशासन के अध्ययन का महत्व सर्वाविदित है। जन–जीवन में इसका महत्व बढ़ता जा रहा है। इसके द्वारा राष्ट्र के विकास के लिये अनेक कल्याणकारी कार्य सम्पन्न किये जा रहे हैं तथा सरकार की सफलता एवं असफलता प्रशासन के कुशल क्रियान्वयन पर निर्भर है। लोक सेवाओं की परीक्षाओं में लोक प्रशासन एक लोकप्रिय विषय के रूप में स्थान प्राप्त कर चुका है। अतः इसका विषय के रूप में अध्ययन आवश्यक प्रतीत होता है। पश्चिमी देशों में लोक प्रशासन का आरम्भ काफी पहले से देखने को मिलता है। हमारे देश में इसका विषय के रूप में प्रारम्भ 1950 के दशक से

देखने को मिलता है। अब यह विषय अनेक विश्वविद्यालयों में पढ़ाया जा रहा है। इस विषय के अध्ययन से देश के लोगों को सरकार किस प्रकार शासन करती है इसकी जानकारी प्राप्त होती है।

➢ **प्रशासकीय राज्य के रूप में –** गोरवाला का मत है कि ''लोकतन्त्र में योजनाओं की सफलता के लिये स्वच्छ, कुशल एवं निष्पक्ष प्रशासन का होना अत्यन्त आवश्यक है।'' इसको योग्य, ईमानदार, तटस्थ और दक्ष लोक–सेवकों की आवश्यकता होती है। वस्तुतः सरकार की योजनाओं एवं कार्यक्रमों को लागू करने का कार्य लोक–सेवकों के द्वारा सम्पन्न किया जाता है। लोक प्रशासन समाज में स्थिरता स्थापित करने वाली शक्ति के रूप में कार्य करता है। **डिमॉक** के अनुसार, ''लोक प्रशासन सभ्य समाज का आवश्यक अंग तथा आधुनिक जीवन का एक प्रमुख तत्व है और इसमें राज्य के उस स्वरूप ने जन्म लिया है जिसे **प्रशासकीय राज्य** कहा जाता है। प्रशासकीय राज्य में जन्म से लेकर मृत्यु तक जीवन के प्रत्येक मोड़ पर व्यक्ति लोक प्रशासन से जुड़ रहता है। लोक प्रशासन व्यक्ति के जन्म से पूर्व ही उसमें रूचि लेने लगता है तथा उसकी मृत्यु के बाद भी अपनी रूचि बनाये रखता है।'' गर्भवती माँ के समुचित आहार एवं दवाइयों की व्यवस्था करने से लेकर व्यक्ति की मृत्यु का सरकारी अभिलेख में उल्लेख करना, प्राकृतिक संकट, महामारी आदि के प्रकोप के समय नागरिकों की सहायता करना लोक प्रशासन के महत्व को स्पष्ट करते हैं।

➢ **लोक–कल्याणकारी राज्य के रूप में –** आधुनिक लोकतांत्रिक देशों को **कल्याणकारी राज्य** भी कहा जाता है। ऐसा राज्य उस देश को कहते हैं, जहाँ सरकार का उद्देश्य आन्तरिक एवं बाह्य सुरक्षा तथा न्याय व्यवस्था के साथ–साथ जनकल्याण से सम्बन्धित कार्यों का करना भी है। पं. जवाहर लाल नेहरू के शब्दों में, ''लोक–कल्याणकारी राज्य का आधारभूत कार्य सबके लिए समान अवसर उपलब्ध कराना, अमीरों और गरीबों के मध्य के अन्तर को मिटाना तथा रहन–सहन के स्तर को ऊँचा उठाना है।'' ऐसे देशों में सरकार नागरिकों की सुविधा के लिये अनेक कल्याणकारी सेवाएँ उपलब्ध करती है। इसमें व्यक्ति की प्रशासन के प्रति निर्भरता भी बढ़ जाती है। एक निश्चित स्तर पर प्रशासन निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करता है। प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च एवं उच्चतर स्तर तक न सिर्फ सामान्य शिक्षा की व्यवस्था करता है बल्कि मेडिकल, इंजीनियरिंग, व्यावसायिक शिक्षा सहित अनेक विशिष्ट शिक्षणों के लिये शैक्षणिक संस्थाओं की व्यवस्था करता है जहाँ व्यक्ति अपनी

योग्यता एवं इच्छानुसार शिक्षा प्राप्त कर सकता है। मनुष्य को स्वास्थ्य की रक्षा, जल, विद्युत, आवागमन, संचार आदि के लिये प्रशासन पर अधिक निर्भर रहना पड़ता है। इस प्रकार कल्याणकारी योजनाओं एवं सुविधाओं के द्वारा प्रशासन हमारा जीवन सुविधामय बनाने का प्रयास करता है।

➢ **सामाजिक परिवर्तन का साधन –** लोक प्रशासन सभ्य जीवन का महत्वपूर्ण साधन है। प्रशासन के बिना सरकार का अस्तित्व ही नहीं रहेगा। विकासशील देशों की परम्परागत जीवन–शैली, अन्धविश्वास, रूढ़ियों तथा कुरीतियों में परिवर्तन लाना एक सामाजिक आवश्यकता है। सुनियोजित सामाजिक परिवर्तन के लिये शिक्षा, राजनीतिक चेतना, आर्थिक विकास, कानून, दबाव समूह तथा स्वयंसेवी संगठनों सहित प्रशासन भी एक उपकरण माना जाता है। लोक प्रशासन सामाजिक परिवर्तन का हथियार होने के साथ–साथ सामाजिक नियन्त्रण का माध्यम भी है। **मैकआइवर एवं पेज** के अनुसार, ''सामाजिक नियन्त्रण का तात्पर्य उस ढंग से है जिसके द्वारा सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था की एकता तथा स्थायित्व बना रह सके और जिसमें 'व्यवस्था' परिवर्तनशील सन्तुलन रूप में समग्र रहती हुई क्रियाशील रहती है।'' भारत में गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी, शोषण, महिला अत्याचार, अपराध, बाल अपराध, दहेज, विधवा विवाह, बाल विवाह, छुआछूत आदि जैसी सामाजिक समस्याएँ विद्यमान हैं। ऐसी जटिल एवं व्यापक सामाजिक समस्याओं एवं कुरीतियों का समाधान केवल सरकार द्वारा निर्मित सामाजिक नीतियों, सामाजिक कानूनों के द्वारा ही सम्भव हो सकता है। स्वतन्त्रता के पश्चात् विभिन्न पंचवर्षिय योजनाओं के द्वारा केन्द्र एवं राज्य सरकारों का मुख्य उद्देश्य आर्थिक–सामाजिक विकास तथा व्यक्ति का जीवन–स्तर उठाना ही रहा है।

➢ **आन्तरिक एवं बाह्य सुरक्षा प्रदान करना –** आज प्रशासन पर देश की सुरक्षा तथा अखण्डता की रक्षा का दायित्व है। प्रशासन को आन्तरिक एवं बाहरी संकट का सामना करना पड़ रहा है। एक तरफ देश में अलगाववादी, आतंकवादी तथा साम्प्रदायकि ताकतें विदेशी शक्तियों के इशारे पर सक्रिय हैं तो दूसरी ओर सीमा की रक्षा, अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा के प्रति बढ़ते हुए खतरे के प्रति प्रशासन जागरूक एवं सक्रिय है। देश की शान्ति व्यवस्था, अखण्डता तथा आपकी सद्भावना एवं कानून व्यवस्था बनाने का दायित्व

लोक प्रशासन का ही है। **हरमन फाइनर** के शब्दों में, ''कुशल प्रशासन, सरकार का एकमात्र सशक्त सहारा है। इसकी अनुपस्थिति में राज्य क्षत–विक्षत हो जायेगा।''

- **सरकारी नीतियों एवं योजनाओं का क्रियान्वयन –** सरकार की नीतियों एवं कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक लागू करने का उत्तरदायित्व लोक प्रशासन पर ही होता है। सरकार की नीतियाँ एवं योजनाएँ कितनी ही अच्छी क्यों न हों उनके परिणाम तभी सफल हो सकते हैं, जब उन्हें कुशलतापूर्वक एवं सत्यनिष्ठा के साथ लागू किया जाये। वस्तुतः सरकार के कार्यों के सफल संचालन के लिये प्रशासनिक लोक–सेवकों का सहयोग आवश्यक है। प्रशासन सरकार का हाथ–पैर है और सरकार की सफलता का महत्त्वपूर्ण माध्यम है। अकुशल प्रशासन सरकार के लिये राजयोग से कम नहीं है। प्रशासनिक अव्यवस्था, अकुशलता एवं अयोग्यता का विस्फोट हो सकता है और सरकार की समस्त व्यवस्था धराशाही हो सकती है। इसलिये वर्तमान युग को **प्रशासनिक राज्य का युग** कहा जाता है। सरकार की समस्त सफलता प्रशासन पर ही निर्भर है।

1.4.3. लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में समानताएं : कुछ विद्वानों ने लोक प्रशासन और निजी प्रशासन के अंतर को मानने से इंकार किया है। इन सभी विद्वानों के अनुसार सभी प्रकार के प्रशासनों में एक जैसी ही विशेषताएं पाई जाती हैं। इन विद्वानों की श्रेणी में हेनरी फयोल, एम.पी. फॉलेट, उर्विक आदि प्रमुख हैं।

निसंदेह, लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में कई समानताएं हैं। यही कारण है कि दोनों ही प्रकार के प्रशासन में जो अंतर हैं, उसको ज्यादातर विद्वान पकड़ ही नहीं पाते हैं। इन दोनों ही प्रकार के प्रशासनों में सबसे बड़ी समानता यह है कि इन दोनों ही प्रकार के प्रशासन में 'कौशल की आवश्यकता' है। यह कौशल एक ही प्रकार का होना आवश्यक है। अर्थात् दोनों ही प्रशासन में एक ही प्रकार के कौशल की आवश्यकता है और यही कारण था कि दोनों ही प्रशासन में कर्मचारी अपने पदों को एक–दूसरे से सामान्यतः बदल सकते हैं।

भारत में 1949–50 ई. में सरकार को उच्च पदाधिकारियों का अभाव हो जाने पर भारतीय प्रशासनिक सेवा (I.A.S.) की विशेष भर्ती के लिए औद्योगिक संस्थाओं में काम करने वाले व्यक्तियों को भी आवेदन पत्र भेजने का नियंत्रण देना पड़ा। यदि दोनों ही प्रशासन के बीच मूलभूत अंतर रहता तो लोक प्रशासन में निजी प्रशासन के पदाधिकारियों

को स्थान नहीं दिया जाता। कार्यालय के प्रबंध के मामले में व्यापारिक संस्थाएं ज्यादा योग्य एवं दक्ष होती हैं। अर्थात् उनको ज्यादा कुशल माना जाता है, और सरकार इन चीजों की नकल करती है। इसी तरह सरकारी प्रशासनों के अनुभवों से निजी प्रशासकीय संस्थाएं लाभ उठाती हैं। लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में काफी समानताएं हैं। इन सभी समानताओं को हम निम्नांकित बिंदुओं के माध्यम से समझ सकते हैं।

संगठन का स्तर – संगठन के स्तर के आधार पर भी दोनों में काफी समानता है। अर्थात् संगठन को प्रशासन का शरीर माना जाता है, तथा दोनों ही प्रशासन में संगठन की आवश्यकता होती है। संगठन के अभाव में प्रशासन को लाभ नहीं मिलता। संगठन प्रशासन के मूल लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक है तथा लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अनिवार्य है कि मानवीय तथा भौतिक संसाधनों को संगठित किया जाए।

कार्यप्रणाली में समानता – दोनों ही प्रकार के प्रशासनों में प्रबंधनवाद प्रवृत्ति पाई जाती है अर्थात् 'प्रबंधात्मक तकनीकें' जो इन दोनों ही प्रशासन में समान रूप में पाई जाती हैं। हिसाब–किताब रखने की पद्धति, फाइलिंग, रिपोर्टिंग, कार्यालय प्रबंध, आंकड़े उपलब्ध कराना आदि दोनों ही प्रशासन में समान रूप से होता है। व्यापारिक तथा औद्योगिक संगठनों की कई विधियां निजी प्रशासन को आंतरिक तथा बाह्य रूप से प्रभावित करती हैं। लोक–निगम, वाणिज्य संगठन तथा परम्परागत सरकारी विभाग के बीच की स्थिति है तथा यह इन दोनों ही प्रकार के प्रशासन के अंतर को समाप्त करती है।

कर्मचारियों में समानता – निजी तथा लोक प्रशासन में जिस कौशल की आवश्यकता पड़ती है, वह कुछ हद तक समान होता है और इसलिए लोक प्रशासन के पदाधिकारियों की नियुक्ति निजी प्रशासन में होती है। निजी प्रशासन में भी पदाधिकारियों की नियुक्ति लोक प्रशासन से होती है।

'एडमिनिस्ट्रेटिव स्टॉफ कॉलेज' हैदराबाद में प्रशिक्षण पा रहे सभी स्टूडेंट को एक जैसी शिक्षा दी जाती है, चाहे वह सरकारी संस्थाओं से आए हों या गैर सरकारी संस्थाओं से।

जनसम्पर्क – दोनों ही प्रशासनों में जनसम्पर्क का अहम स्थान रहता है। समुचित जनसम्पर्क के अभाव में न तो निजी प्रशासन और न ही लोक प्रशासन सफल हो सकता है। दोनों ही प्रशासन लोकप्रियता तथा उपयोगिता पर आधारित है।

अन्वेषण — आज का युग वैज्ञानिक सिद्धांतों का युग है। प्रत्येक कार्य को सरल बनाने के लिए वैज्ञानिक आविष्कारों का सहारा लेना आवश्यक है। अमेरिका में लोक प्रशासन को अधिक वैज्ञानिक परिवेश में ढाला जाता है। लोक प्रशासन की इस प्रवृत्ति को निजी प्रशासन ने भी ग्रहण किया है। आज का प्रशासन नए खोजे गए सिद्धांतों आदि से मार्गदर्शित हो रहा है। नए सिद्धांतों की खोज से उन्हें बल मिलता है तथा प्रगति का रास्ता खुलता है।

कार्यों की प्रकृति — लोक प्रशासन देश की समस्त जनता की मूलभूत आवश्यकताओं जैसे — सुरक्षा, संचार, वित्त, सिंचाई, शिक्षा एवं चिकित्सा की पूर्ति करता है तथा विभिन्न सामाजिक सेवाओं तथा क्रियाओं का संचालन करता है। जबकि निजी प्रशासन समाज के व्यापक और विस्तृत हितों से दूर रहता है और केवल उन्हीं कार्यों को हाथ में लेता है जो उसे लाभ दें।

लाभ की प्रवृत्ति — निजी प्रशासन ऐसे कार्यों को ही हाथ में लेता है, जिनसे जल्दी ही और आसानी से लाभ प्राप्त किया जा सके। 'शराब के कारखाने' या 'कपड़ा मिल' में से क्या शुरू किया जाए?

1.4.4. लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में असमानताएं : दोनों ही प्रशासन में असमानताएं भी पाई जाती हैं। लोक प्रशासन संस्थागत परिवेश के अर्थों में निजी प्रशासन से अलग है। दोनों में ही विभिन्न समानताएं होते हुए भी कुछ असमानताएं पाई जाती हैं। इन दोनों ही प्रशासन के बीच असमानता को दिखाने वाले तत्त्व निम्नलिखित हैं :—

राजनीतिक निर्देश — लोक प्रशासन को सभी निर्देश, भाषाएं, आज्ञाएं, कानून और नियमों के माध्यम से राजनीतिक कार्यपालिका प्रदान करती हैं। कानून और नियमों की रेखा में रहकर ही उचित प्रक्रिया के अंतर्गत लोक प्रशासन को कार्य करना पड़ता है। जबकि निजी प्रशासन को राजनीतिक निर्देश केवल मोटे तौर पर आपातकाल में ही दिए जाते हैं।

सेवाएं तथा मूल्य — लोक प्रशासन में जनता पर उतने ही कर (टैक्स) लगाए जाएंगे जितने की जनहित में आवश्यक हो। जनता को दी जाने वाली सेवाएं तथा जनता से प्राप्त कर के बीच संतुलन रखा जाता है, जबकि निजी प्रशासन में न्यूनतम व्यय करके अधिकतम लाभ प्राप्त करना अहम होता है।

कार्यकुशलता — निजी प्रशासन में वाणिज्यीकरण होने के कारण कार्य में गतिशीलता रहती है, जिसमें हर कार्य तेज गति से हो जाता है। नियम तथा कानूनों की रेखा में रहकर

निजी प्रशासन लोचशीलता का सहारा लेते हैं और कार्य को तेजी से करते हैं। जबकि लोक प्रशासन में 'उचित माध्यम से कार्य करो' और लालफीताशाही, भ्रष्टाचार, भाई – भतीजावाद आदि कारणों की वजह से कार्य धीमी गति से होता है।

1.5. अपनी प्रगति जांचे (Check your progress)

नीचे कुछ प्रश्न दिए गए हैं उनके उत्तर देने का प्रयास करें :–

1. POSDCORB की अवधारणा किसने दी?
2. लोक प्रशासन का जनक किसे माना जाता है?
3. लोक प्रशासन के व्यापक दृष्टिकोण का समर्थक कौन है?
4. लोक प्रशासन के संकुचित दृष्टिकोण का समर्थक कौन है?
5. POCCC की अवधारणा किसने दी?

1.6. सारांश (Summary)

सारांश यह है कि लोक प्रशासन में कुछ ऐसे विशेष लक्षण हैं जो उसे निजी प्रशासन से पृथक् करते हैं। जनता के प्रति उत्तरदायी होना प्रमुख विशेषता है, व्यवहार की समानता व अनुरूपता इसका नारा है, और समाज–सेवा के प्रति जागरूकता इसका आदर्श है। **ऐपल्बी** (Appelby) के अनुसार, ''वे लोग जो सामान्यतया तथा सतत् रूप से शासन के कार्यों में दिलचस्पी का अनुभव नहीं करते, भविष्य में अच्छे कार्यकर्ता नहीं बन सकते सामान्यतः गैर–सरकारी क्षेत्रों में जितनी आर्थिक सफलता किसी कर्मचारी को प्राप्त होती है उतनी ही उसमें स्वार्थ तथा विचार की ऐसी आदतें विकसित हो जाती हैं जो उसे शासन के अयोग्य बना देती है। स्पष्टतः ऊँची श्रेणी के अधिकारियों के लिए अधिक सूक्ष्म तथा गठित योजनाएँ होना आवश्यक है। उनमें देशभक्ति, जोश तथा बुद्धिमता का होना ही काफी नहीं है जिस प्रकार यह गुण वकीलों में से न्यायाधीश एवं असैनिक व्यक्तियों में से सेनापति के पद हेतु उम्मीदवारों के चयन के लिए उपयुक्त मापदण्ड नहीं हो सकता।'' फिर भी लोक तथा निजी प्रशासन दो भिन्न इकाइयाँ नहीं हैं, बल्कि वे एक ही जाति – प्रशासन – के दो प्रकार हैं। निजी व्यापार को भी सामान्य नियमों के अधीन ही कार्य करना पड़ता है और कुछ विशेष नियम उस पर नियन्त्रण रखते हैं। आजकल निजी प्रशासन में लाभ की प्रवृत्ति ही एकमात्र उत्प्रेरक शक्ति नहीं है, बल्कि अब तो प्रबुद्ध हितों द्वारा उसे अधिक से अधिक सजीव बनाया जा रहा है। वास्तविक अर्थों में निजी प्रशासन आजकल अत्यन्त व्यवस्थित एवं नियमित प्रशासन है और यह नियमन उस सार्वजनिक उत्कण्ठा से प्रस्फटित हुआ है जो

उसे समाज के कुछ निर्धारित आदर्शों और महत्वाकांक्षाओं के साथ एकाकार करने का इच्छुक है।

इस अध्याय में नवीन लोक प्रबन्धन और नवीन लोक प्रशासन के बारे में भी विवरण दिया गया है। नवीन लोक प्रबन्धन सरकार की नवीन नीतियों के बारे में या वैश्वीकरण के बारे में सरकार की नीतियों को दर्शाता है। नवीन लोक प्रशासन सरकार में नवीन प्रशासनिक विधियों का विवरण करता है जिससे प्रशासन में नवीनता लाई जा सके और प्रशासनित समस्याओं का निदान किया जा सके।

1.7. सूचक शब्द (Key Words)

लोक प्रशासन, लोक प्रबन्धन, नवीन लोक प्रशासन, विकास प्रशासन

लोक प्रशासन – लोक प्रशासन से हमारा अभिप्राय, सरकार के द्वारा किये जाने वाले प्रशासनिक कार्यों से है।

लोक प्रबन्धन – लोक प्रबन्धन से हमारा अभिप्राय सरकार के द्वारा प्रबन्ध किये कार्य करने से है या योजनाएं बनाने से हैं।

नवीन लोक प्रशासन – नवीन लोक प्रशासन वह प्रशासन है जो प्रशासनिक विकास को दर्शाता है और वर्तमान की आवश्यकताओं को पूरा करता है।

विकास प्रशासन – विकास प्रशासन का प्रारम्भ 70 के दशक के बाद हुआ जो प्रशासन में नवीनता को दर्शाता है।

1.8 स्वयं मूल्यांकन हेतु प्रश्न (Self Assessment Questions) :-

1. लोक प्रशासन के क्षेत्र और विकास को परिभाषित कीजिए ?
2. निजी प्रशासन और लोक प्रशासन में अन्तर तथा समानताओं को दर्शाइए।
3. नवीन लोक प्रबन्धन से आप क्या समझते हैं।
4. लोक प्रशासन के शब्द को परिभाषित करते हुए इसके क्षेत्र को दर्शाइए।
5. लोक प्रशासन के महत्व को दर्शाइए।

1.9. अपनी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर (Answer for check your progress):-

1. लूथर गुलिक ने
2. वुडरो विल्सन

3. सी.डी. व्याईट
4. लूथर गुलिक
5. हेनरी फेयोता

1.10. सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference):-

1. Public Administration, Mcgraw Hill : Laxmi Kant. M
2. New Horizons of Public Administration; Mohit Bhattacharya; Jawahar Publisher & Distribution.
3. Indian Administration; S.R. Maheshwari, Orient Black Swan.
4. Public Administration Theory and Practice; Hoshiar Singh and Pardeep Sachdeva; Pearson.
5. प्रशासनिक चिंतक; प्रसाद एण्ड प्रसाद सत्यनारायण; जवाहर पब्लिकेशन एण्ड डिस्ट्रीब्यूशन।

Subject : लोक प्रशासन	
Course Code **:**	Author **:**
Lesson No. **: 2**	Vetter **:**
नवीन लोक प्रशासन	

अध्याय – 2 नवीन लोक प्रशासन

2.1 अधिगम उद्देश्य **(Learning Objectives)**

2.2. प्रस्तावना **(Introduction)**

2.3. अध्ययन के मुख्य बिन्दु **(Main Point of Text)**

- 2.3.1. नवीन लोक प्रशासन का अर्थ व परिभाषा
- 2.3.2. नवीन लोक प्रशासन : विकास
- 2.3.3. नवीन लोक प्रशासन की विषय–वस्तु

2.4. अध्याय के आगे का प्रमुख भाग **(Further Main Body of Text)**

- 2.4.1. नवीन लोक प्रशासन का उद्देश्य
- 2.4.2. नवीन लोक प्रशासन की विशेषताएँ
- 2.4.3. नवीन लोक प्रशासन का विकास
- 2.4.4. नवीन लोक प्रशासन सम्बन्धित प्रतिवेदन
- 2.4.5. नवीन लोक प्रशासन के सिद्धान्त एवं व्यवहार सम्बन्धित सम्मेलन
- 2.4.6. नवीन लोक प्रशासन से सम्बन्धित मिलोबुक सम्मेलन

2.5. अपनी प्रगति जांचे **(Check your progress)**

2.6. सारांश **(Summary)**

2.7. सूचक शब्द **(Key Words)**

2.8. स्वयं मूल्यांकन हेतु प्रश्न **(Self Assignment Questions)**

2.9. अपनी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर **(Answer for Check your progress)**

2.10. सन्दर्भ ग्रन्थ **(Reference)**

2.1 अधिगम उद्देश्य (Learning Objectives)

इस अध्याय में आप निम्न विषयों के बारे में अध्ययन कर पाएंगे :

- नवीन लोक प्रशासन का अर्थ व परिभाषा
- नवीन लोक प्रशासन की अवधारणा
- नवीन लोक प्रशासन का लक्ष्य
- नवीन लोक प्रशासन की विकास की यात्रा
- नवीन लोक प्रशासन सम्बन्धित प्रतिवेदन
- नवीन लोक के सिद्धान्त एवं व्यवहार सम्बन्धित सम्मेलन
- नवीन लोक प्रशासन की विशेषताएं

2.2. प्रस्तावना (Introduction)

1960 के दशक का अन्त पश्चिमी देशों, विशेषकर अमरीका के लिये उथल–पुथल का रहा है। अन्य सामाजिक विषयों; जैसे – मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र की भाँति लोक प्रशासन भी इस उथल–पुथल से प्रभावित हुआ। परम्परावादी लोक प्रशासन अमरीकी समाज के संकट को सुलझाने में सफल नहीं हुआ। सामाजिक–आर्थिक संकटों के कारण उत्पन्न हो रही नई माँगों एवं चुनौतियों का यह सामना नहीं कर पा रहा था। आणविक शस्त्रों से उत्पन्न आतंक की स्थिति, सामाजिक भेदभाव, वियतनाम युद्ध तथा वाटरगेट काण्ड के उपरान्त अमरीका में यह मांग लोकप्रिय हुई कि लोक प्रशासन को जन–समस्याओं के समाधान के क्रम में ठोस एवं व्यावहारिक भूमिका निर्वाहित करनी चाहिए। जैसा कि **रॉबर्ट टी. गोलम्ब्यूस्की** (R.T. Golambiewski) ने कहा है, ''लोक प्रशासन के लिये इस शताब्दी का सातवाँ दशक युद्ध के समान था। लोक प्रशासन के पुराने सिद्धान्तों–मितव्ययिता तथा कार्य–कुशलता को लोक प्रशासन की क्रिया–प्रणाली के उद्देश्य के रूप में अपर्याप्त एवं अपूर्ण पाया गया।

2.3. अध्ययन के मुख्य बिन्दु (Main Point of Text)

2.3.1. नवीन लोक प्रशासन का अर्थ व परिभाषा : समय और अनुभव के प्रभावाधीन मानवीय विचारों एवं धारणाओं में परिवर्तन होता रहता है। प्रत्येक अनुशासन अथवा विषय में समय के साथ–साथ नए विचारों की उत्पत्ति होती रहती है। कभी–कभी ये विचार प्रचलित विचारों की तुलना में इतने अत्यधिक महत्त्वपूर्ण एवं क्रांतिकारी होते हैं कि उन्हें नवीन विचार

या धारणा का नाम दिया जाता है। 1960–1970 के दशकों में समाजशास्त्र, मनोविज्ञान तथा राजनीतिशास्त्र की भांति लोक प्रशासन के क्षेत्र में भी नए विचार उदय हुए। इसका कारण यह था कि उस समय लोक प्रशासन के क्षेत्र में भी नए विचार उदय हुए। इसका कारण यह था कि उस समय लोक प्रशासन अस्थिरता तथा अस्त–व्यस्तता (Confusion) के वातावरण में से गुजर रहा था। इस का अध्ययन तथा व्यवहार उस समय की अस्त व्यस्तता तथा बढ़ती हुई नाजुक समस्याओं का उचित ढंग से समाधान करने के योग्य नहीं थे। उस समय पुरातन सिद्धान्तों पर आधारित लोक प्रशासन के मुख्य उद्देश्यों कुशलता एवं मितव्ययता (Efficiency and Economy) को अनुचित एवं अपर्याप्त समझा जाने लगा। इसके स्थान पर मूल्यों पर बल दिया जाने लगा। लोक प्रशासन के सम्बन्ध में यह कहा जाने लगा कि क्योंकि सभी गतिविधियों का केन्द्र मनुष्य है, इसलिए सकारात्मक उद्देश्यों को समक्ष रखते हुए लोक प्रशासन को मूल्योन्मुख (Value Oriented) होना चाहिए। ये विचार इतने क्रान्तिकारी थे कि इन्होंने लोक प्रशासन के स्वरूप को ही बदल दिया। इस नवीन विचाराधारा को नवीन लोक प्रशासन का नाम दिया गया।

इस नवीन विचारधारा की उत्पत्ति 1968 में आयोजित मिन्नोब्रुक सम्मेलन (Minnowbrook Conference) के निष्कर्षों के आधार पर हुई। यह एक युवा सम्मेलन था जिसमें इस सम्मेलन के संस्थापकों में से एक संस्थापक डवाइट वाल्डो (Dwight Waldo) के निमन्त्रण पर पचास नवयुवक विशेषज्ञों (प्रशासनिक कार्यकर्त्ता तथा अध्यापकों) ने भाग लिया। वे लोक प्रशासन की उस समय की स्थिति के प्रति उदासीन थे तथा इसे यथार्थ रूप में अधिक उपयोगी बनाने के पक्ष में थे ताकि यह समकालीन चुनौतियों का सामना तथा समस्याओं का समाधान कर सके। क्योंकि वे समस्त व्यवस्था को बदलना चाहते थे इसलिए उन्हें क्रांतिकारी कहा जा सकता है। उन द्वारा प्रस्तुत किए गए विचारों ने नवीन लोक प्रशासन को जन्म दिया। यद्यपि नवीन लोक प्रशासन की उत्पत्ति 1968 में मिन्नोब्रुक सम्मेलन के परिणामस्वरूप हुई तथापि इसे मान्यता 1971 में फ्रैंक मेरीनी (Frank Marini) द्वारा सम्पादित पुस्तक ''नवीन लोक प्रशासन की दशा में : मिन्नोब्रुक परिपेक्ष्य में'' (Towards a New Public Administration : The Minnowbrook Perspective) के प्रकाशन में प्राप्त हुई। इस वर्ष डवाइट वाल्डो (Dwight Waldo) द्वारा सम्पादित पुस्तक पब्लिक ऐडमिनिस्ट्रेशन इन ए टाइम ऑफ टरबुलेन्स (Public Administration in a Time of Turbulence) प्रकाशित हुई जिससे नवीन लोक प्रशासन की धारणा को और भी बल दिया।

इस पुस्तक में वाल्डो ने 1969 में अमेरिकन राजनीतिशास्त्र समुदाय (American Political Science Association) के वार्षिक सम्मेलन में प्रस्तुत किए गए लेखों को सम्पादित किया। इन दोनो पुस्तकों द्वारा मिन्नोब्रुक सम्मेलन में प्रस्तुत किए गए लेखों को सम्पादित किया। इन दोनों पुस्तकों द्वारा मिन्नोब्रुक सम्मेलन के विचारों तथा निष्कर्षों का व्यापक प्रसार हुआ तथा नवीन लोक प्रशासन की धारणा को मान्यता प्राप्त हुई।

वियतनाम युद्ध के बाद के वर्ष पश्चिमी देशों में, विशेषकर संयुक्त राज्य अमरीका (U.S.A.) में, बड़ी उथल–पुथल के रहे हैं। एशिया के इस छोटे से देश में अमरीका ने जो नरसंहार किया उसकी खबरें धीरे–धीरे लोगों तक पहुँचने लगी, तथा 1960 के आसपास के वर्षों में एक नवीन नैतिक चेतना ने जन्म लिया। सारे सामाजिक विज्ञान इसकी लपेट में आये तथा लोक प्रशासन में भी यह लहर तेजी से आयी। इस लहर को 'नवीन लोक प्रशासन' की संज्ञा दी गयी है।

2.3.2. नवीन लोक प्रशासन : विकास : 1971 में **फ्रेंक मेरिनी** द्वारा सम्पादित पुस्तक 'नवीन लोक प्रशासन की दिशाएँ – मिन्नोब्रुक परिप्रेक्ष्य' (Towards a New Public Administration : Minnowbrook Perspective) के प्रकाशन के साथ ही नवीन लोक प्रशासन को मान्यता प्राप्त हुई। यह रचना 1968 में आयोजित मिन्नोब्रुक सम्मेलन के निष्कर्षों पर आधारित है। स्मरणीय है कि नवीन लोक प्रशासन का बीजारोपण बहुत पहले हो चुका था। इसके उदय एवं विकास के प्रमुख कारण अग्रलिखित थे :

- सार्वजनिक सेवाओं सम्बन्धी उच्च शिखा पर हनी प्रतिवेदन, 1967 (The Honey Report of Higher Education for Public Service, 1967) |
- लोक प्रशासन के सिद्धान्त एवं व्यवहार सम्बन्धी फिलाडेल्फिया सम्मेलन, 1967 (The Philadelphia Conference on the Theory and Practice of Public Administration, 1967) |
- प्रथम मिन्नोब्रुक सम्मेलन, 1968 (The First Minnow Brook Conference, 1968) |
- मेरिनी एवं वाल्डो की रचनाओं का प्रकाशन (Publication of Books of Marini and Waldo) |
- द्वितीय मिन्नो ब्रुक सम्मेलन, 1988 (The Second Minnow Brook Conference, 1988) |

- तृतीय मिन्नो ब्रुक सम्मेलन, 2008 (The Third Minnow Brook Conference, 2008)।

इन प्रतिवेदनों, सम्मेलनों तथा पुस्तकों के प्रकाशन का यहाँ विस्तृत अध्ययन करना समीचीन होगा।

2.3.3. नवीन लोक प्रशासन की विषय–वस्तु : नवीन लोक प्रशासन सामाजिक समस्याओं के प्रति अत्याधिक संवेदनशील है। इसे अमरीकी समाज में लोकतान्त्रिक पुनरूत्थान की प्रतिक्रिया भी माना जाता है। **वाल्डो** के अनुसार, ''नवीन लोक प्रशासन मानकात्मक सैद्धान्ति विचारधारा (Normative Theory), दर्शन (Philosophy), सामाजिक प्रतिबद्धता (Social Concern) तथा सक्रियतावाद (Activism) की दिशा में एक प्रकार का क्रान्ति घोष है।''[25] यह ग्राहक उन्मुखी तथा मूल्यपरक है। यह जातिगत (generic) की तुलना में जनोन्मुखी (publicly) अधिक है, यह विवरणात्मक (descriptive) की तुलना में निर्देशात्मक (perspective) अधिक है।

लोक प्रशासन के शास्त्रीय मूल्य–दक्षता, मितव्ययिता, उत्पादकता एवं विकेन्द्रीकरण रहे हैं। नवीन लोक प्रशासन मूल्यों के नवीन तथ्यों को प्रश्रय देता है। यह मानववाद, बहुवाद, विकेन्द्रीकरण, प्रत्यायोजन, व्यक्तिगत गरिमा, मौलिकता, सदाचरण आदि का समर्थक है। यह इस मत को अस्वीकार करता है कि प्रशासन मूल्यों के प्रति तटस्थ होता है। यह नागरिक सहभागिता का समर्थक है तथा नौकरशाही के प्रति उत्तरदायित्व का समर्थन करता है।

2.4. अध्याय के आगे का मुख्य भाग (Further Main Body of Text)

2.4.1. नवीन लोक प्रशासन का उद्देश्य : नवीन लोक प्रशासन यद्यपि लक्ष्योन्मुखी तथा परिवर्तनामुखी है परन्तु इस का कोई ऐसा सिद्धान्त नहीं जिस पर इस के सभी समर्थक सहमत हों। इसके मुख्य मुद्दों तथा विशेषताओं के सम्बन्ध में भी असहमति विद्यमान है। इस असहमति के होते हुए भी राबर्ट टी. गोलमब्यूसकी ने नवीन लोक प्रशासन के तीन प्रतिलक्ष्य जिनको वे रद्द करते हैं, तथा पांच लक्ष्य जिनका वे समर्थन करते हैं की चर्चा की है।

नवीन लोक प्रशासन के तीन मुख्य उद्देश्य हैं –

1. नवीन लोक प्रशासन का साहित्य प्रत्यक्षवाद का विरोधी है जिसका अभिप्राय है –

   (क) वे लोक प्रशासन की इस परिभाषा को, कि यह मूल्यरहित है, रद्द करते हैं।

   (ख) वे मानव – जाति के बुद्धिवादी तथा सम्भवतः निश्चयवादी दृष्टिकोण को रद्द करते हैं।

   (ग) वे लोक प्रशासन की कोई भी ऐसी परिभाषा जो ठीक प्रकार से नीति में लिपटी न हो (जैसा कि राजनीति–लोक प्रशासन विभाजन में था) रद्द करते हैं। नवीन लोक प्रशासन तकनीक विरोधी है। इसका अभिप्राय यह है कि इसके समर्थक इस बात को बुरा समझते मनुष्य को मशीन के तर्क तथा व्यवस्था के लिए बलिदान कर देना चाहिए। नवन लोक प्रशासन नौकरशाही तथा पदानुक्रम का भी थोड़ा बहुत विरोध करता है।

2.4.2. नवीन लोक प्रशासन की विशेषताएँ : यह स्मरणीय है कि ऐसा कोई सिद्धान्त नहीं जिस पर नवीन लोक प्रशासन के समस्त समर्थक सहमत हों। यहाँ तक कि केन्द्रीय मुद्दे और मुख्य विशेषताओं पर भी असहमति है। नवीन लोक प्रशासन विचारधारा समयानुकूल तथा परम्परागत लोक प्रशासन में परिवर्तन की विचारधारा है। नवीन लोक प्रशासन ने नवीन विचारों की दृष्टि प्रदान की जिससे हम नवीन लोक प्रशासन की विशेषताओं को पहचान सकते हैं, जो निम्नलिखित हैं:–

- नवीन लोक प्रशासन पूर्णतया मानवीय व्यवहार, दृष्टिकोण एवं मानवीय सम्बन्धों की समर्थक है। यह परम्परागत लोक प्रशासन की 'यान्त्रिकता' एवं 'आर्थिक मानव' की अवधारणा को स्वीकार नहीं करता है। वस्तुतः नवीन लोक प्रशासन मानवोन्मुख है और यह मानता है कि मानव में सम्पूर्ण बनने की सामर्थ्य है।

- नवीन लोक प्रशासन राजनीति और प्रशासन के 'द्विविभाजन' को अस्वीकार करता है। साथ में यह निजी एवं लोक प्रशासन के बीच के अन्तर को भी स्वीकार नहीं करता है। दोनों प्रशासन एक–दूसरे के पूरक हैं क्योंकि दोनों ने ही एक–दूसरे के गुणों को अपना लिया है। **पॉल एपलबी** के अनुसार, ''राजनीति एवं प्रशासन को अलग–अलग बिन्दु

मानने पर लोक प्रशासन की सर्वस्वीकार्यता कम होगी साथ ही साथ कल्याणकारी राज्य की अवधारणा भी ध्वस्त हो जायेगी।'' अतः इन दोनों के बीच विभाजन अव्यावहारिक, अप्रासंगिक तथा अवास्तविक है। इसी प्रकार **रॉबर्ट टी, गोलम्ब्यूस्की** लिखता है कि ''प्रशासन महत्त्वपूर्ण कार्यों में राजनीति को परिवर्तित कर सकता है न कि राजनीति प्रशासन को।'' अतः लोक प्रशासन और राजनीति में द्विविभाजन नहीं होना चाहिए।

- नवीन लोक प्रशासन निश्चित रूप से सम्बन्धात्मक है। यह ग्राहक–केन्द्रि दृष्टिकोण पर बल देता है। यह इस बात पर बल देता है कि नागरिकों को यह बताने का अधिकार होना चाहिए कि उनको क्या, किस प्रकार और कब चाहिए। **नीग्रो** और **नीग्रो** के शब्दों में, ''लोक सेवाओं का अधिक प्रभावशाली तथा मानवीय वितरण उसी स्थिति में सार्थक सिद्ध हो सकता है जबकि ग्राहक–केन्द्रित प्रशासन के साथ, लोक प्रशासन में नौकरशाही को दूर किया जाये।'' संक्षेप में, लोक प्रशासन को नागरिकों की रूचि एवं आवश्यकतानुसार सेवा करनी चाहिए।

- नवीन लोक प्रशासन परम्परागत दृष्टिकोण को त्यागता हुआ और व्यवहारवादी दृष्टिकोण की दीवार को लाँघता हुआ उत्तर–व्यवहारवादी दृष्टिकोण के मुकाम तक पहुँच चुका है। यह परिवर्तन तथा नवीनता का समर्थक है। इसके साथ–साथ नवीन लोक प्रशासन पारिस्थितिकी और पर्यावरण के अध्ययनों पर अधिक बल देता है।

- नवीन लोक प्रशासन परिवर्तनशील प्रशासनिक तन्त्र, विकेन्द्रीकरण तथा प्रत्यायोजन का समर्थन है जिससे कल्याणकारी योजनाएँ शीघ्र एवं प्रभाव ढंग से लागू हो सकें। यह जनसहभागिता का समर्थन करते हुए नौकरशाही के उत्तरदायित्वों एवं प्रतिबद्धता को रेखांकित भी करता है।

नवीन लोक प्रशासन मूल्यों से परिपूर्ण प्रशासन, जनसहभागिता, उत्तरदायित्व तथा सामाजिक हितप्रद कार्यों पर बल देता है। नवीन लोक प्रशासन के समर्थक चाहते हैं कि सामाजिक न्याय और समानता के अनुरूप उपागम अपनाए जायें ताकि लोक प्रशासन, समाज के निर्धन और दलित वर्ग तथा अल्पसंख्यक वर्ग का उत्थान कर सके। इसी मान्यता के आधार पर लोक प्रशासन सामाजिक परिवर्तन का अभिकर्त्ता बन जाता है।

2.4.3. नवीन लोक प्रशासन का विकास : नवीन लोक प्रशासन को समझने के सन्दर्भ में परम्परागत लोक प्रशासन का फौरी तौर पर अवलोकन करना उचित ही होगा,

1887 में जब लोक प्रशासन का उदय हुआ तो तत्कालीन लेखकों–विचारकों के सम्मुख यह चुनौती थी कि किस तरह लोक प्रशासन को अन्य विषयों की छाया से मुक्त रखा जाए, चूँकि लोक प्रशासन व राजनीतिशास्त्र में अच्छा सामंजस्य रहा है।

इसलिए यह प्रयास किया कि राजनीति व लोक प्रशासन का घोलमोल न होने पाये। इस हेतु तत्कालीन विचारकों तथा वुडरो विल्सन, फ्रेंक जे गुडनो, एल.डी. व्हाइट आदि ने राजनीति प्रशासक द्विभावन (Dichotomy) पर बल दिया। ऐसे प्रयास 1927 तक होते रहे, इस समय डब्ल्यू, एफ, विलाबी की पुस्तक 'Principles of Public Administration' प्रकाशित हुई। एक विषय के रूप में लोक प्रशासन को स्थापित करने की सफलता के पश्चात् लोक प्रशासन को विज्ञान विषय का दर्जा दिलाने का प्रयास किया गया यह कोशिश की गई कि लोक प्रशासन में कुछ निश्चित सिद्धांतों का अन्वेषण किया जाए परिणामतः पोस्डकॉर्ब, आदेश की एकता, पद सोपान, संचार केंद्रीकरण, कार्य विभाजन, मितव्ययता, कार्यकुशलता जैसे सिद्धांतों की खोज हुई, सिद्धांतों के प्रतिपादन में फेयाल, उर्तिक, एम.पी. फॉलेट, पिपनर, प्रेस्थस, मूनी, रैले, लूथर, गूलिक, साइमन आदि ने अपना योगदान किया।

किंतु मात्र एक दशक के अल्पकाल में ही लोक प्रशासन के उक्त सिद्धांत हास्यास्पद स्थिति के शिकार हो गए। 1938 में चेस्टर बनार्ड की पुस्तक "The Function of Executives" में बताया गया कि लोक प्रशासन के सिद्धांत मुहावरों में कम नहीं है। इस पुस्तक में कहा गया कि प्रशासन में किसी सिद्धांत को कोई अर्थ नहीं है, क्योंकि निश्चित सिद्धांतों की उपस्थिति किसी विषय को 'विज्ञान' की श्रेणी में ला देती है, जबकि लोक प्रशासन विज्ञान तो हो ही नहीं सकता सिद्धांतों की निश्चितता को मान्यता नहीं मिल सकी, क्योंकि सभी में कोई भी स्पष्ट रूप से लागू नहीं हो सकता था। 1948 में इन तथाकथित सिद्धांतवादियों की जमकर धज्जियाँ उड़ाई गई, किंतु 1948 के पश्चात् लोक प्रशासन विषय को गम्भीर चुनौती का सामना करना पड़ा, क्योंकि विचारकों ने लोक प्रशासन में सिद्धांतों का अभाव तो घोषित कर दिया था, किंतु नया स्वरूप क्या हो, यह घोषित नहीं किया। असमंजस का यह काल जिसे लोक प्रशासन विषय के सन्दर्भ में पहचान का संकट का काल कहा जाता है जो 1968 तक चलता रहा। 1968 के पश्चात् लोक प्रशासन के क्षेत्र में नवीन विचारों का सूत्रपात हुआ। सातवें दशक के अंतराल में उभरे विचारों को ही नवीन लोक प्रशासन की संज्ञा दी गई। वस्तुतः नव लोक प्रशासन का आरम्भ 1967 के प्रतिवेदन

से समझा जा सकता है। प्रदर्शन पर जबरदस्त पर वाद–विवाद हुआ, कुछ चिन्तकों ने लोक प्रशासन को महज बौद्धिक चिन्तन का केन्द्र माना तो दूसरों ने उसे प्रक्रिया माना। कुछ चिंतकों ने इसे प्रशासन को तो कुछ ने समाज का अंग माना, वस्तुस्थिति यह रही कि इस सम्मेलन में लोक प्रशासन का नवीन स्वरूप निर्धारित नहीं किया जा सका। 1968 में आयोजित मन्नोब्रुक कॉन्फ्रेंस ने लोक प्रशासन की प्रकृति में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया। यह सम्मेलन नवीन लोक प्रशासन को स्थापित करने में मील का पत्थर सिद्ध हुआ है सम्मेलन विभिन्न दृष्टिकोणों से महत्त्वपूर्ण रहा। प्रथम तो यह कि इस सम्मेलन में वे समस्त बिंदु वाद–विवाद की परिधि में गए जो बीते दो सम्मेलनों में शामिल नहीं किए गए थे। द्वितीय है कि बीते दो सम्मेलनों में युवा विचारकों का प्रतिनिधित्व रहा। मिन्नोब्रुक सम्मेलन का निहितार्थ यह हुआ कि परम्परागत लोक प्रशासन के स्थान पर नवीन लोक प्रशासन के नाम से प्रकाश में आया। सम्मेलन के सार तत्त्वों को समेटे हुए। 1971 में फ्रेंक रीनीकृत "Towards a New Public Perspective" के काशन के साथ ही नवीन लोक प्रशासन को मान्यता प्राप्त हुई। इसी समय ड्वाइट वाल्डो की कृति 'Public Administration in a time of Turbulence' ने नवीन लोक प्रशासन को और अभिशक्त बना दिया। उक्त दोनों पुस्तकों में नवीन लोक प्रशासन को सामाजिक समस्याओं के प्रति संवेदनशील माना गया है।

नवीन लोक प्रशासन के विकास को निम्नलिखित चरणों में बाँटा जा सकता है –

1. सार्वजनिक सेवाओं पर उच्च शिक्षा सम्बन्धी हनी प्रतिवेदन, 1967
2. लोक प्रशासन : सिद्धांत एवं व्यवहार सम्बन्धी सम्मेलन, 1967
3. प्रथम मिन्नोब्रुक सम्मेलन, 1968
4. फ्रेक मेरिनी की सम्पादित पुस्तक; नवीन लोक प्रशासन की दिशाएँ, मिन्नोब्रुक परिपेक्ष्य, 1971
5. ड्वाइट वाल्डो की पुस्तक उथल–पुथल के काल में लोक प्रशासन, 1971
6. एच जार्ज फ्रेडरिक्सन की पुस्तक लोक प्रशासन, 1980
7. द्वितीय मिनोब्रुक सम्मेलन, 1988

2.4.4. नवीन लोक प्रशासन सम्बन्धित हनी प्रतिवेदन : 1966 में लोक प्रशासन की अमेरिकन संस्था (American Society for Public Administration) ने सिराकूज विश्वविद्यालय (Syracuse University) के श्री जॉन सी. हन (John C. Honey) को अमेरिकी विश्वविद्यालयों में लोक प्रशासन के स्वतंत्र विषय के रूप में अध्ययन मूल्यांकन के लिए कहा। श्री जॉन ने

अपना प्रतिवेदन 1967 में पेश किया। इस में उन्होंने लोक प्रशासन की वास्तविक स्थिति का वर्णन करते हुए इसके क्षेत्र को और विस्तृत एवं व्यापक बनाने पर बल दिया। उसने लोक प्रशासन के क्षेत्र में विस्तार करने के लिए इसे समस्त प्रशासकीय प्रक्रिया अथवा समस्त सरकार के अनुरूप बताया। उसके अनुसार लोक प्रशासन के क्षेत्र में कार्यपालिका, विधानपालिका तथा न्यायपालिका सम्मिलित हैं।

हनी के अनुसार लोक प्रशासन के क्षेत्र को व्यापक बनाने के मार्ग में चार समस्याएं बाधा डालती है –

1. अनुशासन से सम्बन्धित साधनों (विद्यार्थी, अध्यापक तथा अनुसंधान राशि) की कमी
2. अनुशासन के स्तर के बारे में मतभेद, कि क्या लोक प्रशासन एक विज्ञान है या एक व्यवसाय
3. संस्थागत दुर्बलता। लोक प्रशासन के विभागों का कम होना, तथा
4. लोक प्रशासन के विद्वानों तथा व्यावहारिक प्रशासकों में मेल–मिलाप का अभाव

हनी ने अपने प्रतिवेदन में लोक प्रशासन की इन समस्याओं को दूर करने के लिए कई सुझाव दिए, जिन में से मुख्य सुझाव निम्न प्रकार है :

1. लोक सेवा शिक्षा से सम्बन्धित राष्ट्रीय आयोग की स्थापना की जाए तो शासन के लिए आवश्यक शिक्षित व्यक्तियों को उपलब्ध करवाने के लिए उत्तरदायी हो।
2. लोक सेवा में प्रवेश करने तथा व्यवसायिक डिग्रियों के लिए मास्ट्र (Master) तथा डॉक्टरीय (Doctorate) स्तर पर तैयारी करने वाले स्नातकोत्तर को छात्रवृत्तियां देने का महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम बनाना चाहिए।

3. लोक सेवाओं में प्रवेश करने के लिए तैयारी करने वाले स्नतकोत्तर तथा उग्रवर्ती पूर्वस्नातक (Advanced Undergraduates) छात्रों के लिए संघीय, राज्य तथा स्थानीय स्तर पर प्रशिक्षण की सुविधा का प्रबन्ध किया जाए।

4. जो व्यक्ति स्कूलों में लोक प्रशासन एवं सार्वजनिक मामलों में अध्यापक बनने की योजना बना रहे हों कि शिक्षावृत्तियां (Fellowship) देने का विशेष कार्यक्रम बनाना चाहिए।

5. विश्वविद्यालय के अध्यापकों को जो सार्वजनिक मामलों तथा अनुसंधान में लगे हुए हों को सरकारी कार्यों का अनुभव प्राप्त करने के लिए अवसर प्रदान के लिए एक कार्यक्रम बनाना चाहिए।

6. सार्वजनिक मामलों में प्रशिक्षण एवं अनुसंधान के लिए विश्वविद्यालयों को अनुदान दिया जाए।

7. सार्वजनिक मामलों एवं प्रशासन से सम्बन्धित शोध कार्यों में लगे हुए व्यक्तियों को आर्थिक तथा अन्य प्रकार की सहायता दी जाए।

8. संघीय, राज्य, स्थानीय सरकारों तथा निजी उद्योगों (Private Industry) द्वारा शिक्षा केन्द्रों को लोक प्रशासन तथा सार्वजनिक मामलों में शिक्षा देने के लिए सहायता दी जाए।

9. नवीन लोक प्रशासन तथा सार्वजनिक मामलों के कार्यक्रमों के लिए एक परामर्शदात्री सेवा की स्थापना की जाए ताकि लोक प्रशासन तथा सार्वजनिक मामलों के छात्रों को नवीन सूचनाएं सरलता से मिल सकें।

10. लोक सेवा से सम्बन्धित प्रशिक्षण तथा शिक्षा की दृष्टि से समय–समय पर विश्वविद्यालयों की समीक्षा की जाए ताकि यह जानकारी प्राप्त हो सके कि विभिन्न संस्थाएं किस प्रकार सेवा, शिक्षा तथा अन्य दायित्वों की व्यवस्था करती हैं। इन के द्वारा किस प्रकार से नवीन विकास को प्रोत्साहन दिया जाता है तथा इनकी क्या–क्या समस्याएं हैं।

11. व्यवसायों, व्यवसायिक, शिक्षा तथा सार्वजनिक सेवाओं का अध्ययन किया जाए।

हनी द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट अमेरिका में चर्चा का विषय बन गई। कुछ क्षेत्रों में इसका स्वागत किया गया जबकि अनय क्षेत्रों में यह विवाद का विषय बन गई। इसके सम्बन्ध में कई प्रकार के प्रश्न उठाए गए। आलोचकों ने यह टिप्पणी की कि इस प्रतिवेदन द्वारा अत्यधिक महत्त्व की कई बातों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। जैसे इस प्रतिवेदन में उस समय के अमेरिकी विभाजित तथा उथल–पुथल हुए समाज के प्रति लोक प्रशासन के दायित्व एवं भूमिका के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा गया और न ही इस बात की ओर ध्यान दिया गया कि लोक प्रशासन का समकालीन सामाजिक समस्याओं से कोई सम्बन्ध है कि नहीं। परन्तु इन कमियों के होते हुए भी हनी के प्रतिवेदन का विशेष महत्त्व है। इसने लोक प्रशासन के कई विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया तथा उन्हें इस बात पर गम्भीरता से विचार करने के लिए प्रेरित किया कि समकालीन समाज में लोक प्रशासन की क्या भूमिका है तथा यह सामाजिक समस्याओं का कैसे समाधान कर सकता है। अतः हनी प्रतिवेदन को नवीन लोक प्रशासन की पृष्ठभूमि कहा जा सकता है।

2.4.5. नवीन लोक प्रशासन के सिद्धान्त एवं व्यवहार सम्बन्धित सम्मेलन : लोक प्रशासन में शीघ्रातिशीघ्र विकास और संश्लेषण की आवश्यकता को अनुभव करने पर अमरीकी राजनीतिशास्त्र परिषद् ने दिसम्बर 1967 में एक सम्मेलन आयोजित किया। इसमें विचारणीय विषय था – 'लोक प्रशासन का सिद्धांत एवं व्यवहार उसका क्षेत्र, उद्देश्य एवं अध्ययन पद्धति'। जेम्स सी. चार्ल्ससवर्थ ने सम्मेलन की अध्यक्षता की थी। सम्मेलन में भाग लेने वाले विद्वानों की भावनाओं को व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा था कि "इस सभा में भाग लेने वालों द्वारा इस भावना की अभिव्यक्ति हुई है कि लोक प्रशासन के सम्बन्ध में दृढ़ एवं संक्षिप्त उपागम को अपनाना चाहिए और उन्होंने व्यापक दार्शनिक संदर्भ में लोक प्रशासन के महत्त्व का आकलन करने पर बल दिया। इस पर भी विचार किया कि क्या लोक प्रशासन केवल मानसिक सिद्धि है या शासन का व्यावहारिक यन्त्र है?

इस सम्मेलन में विद्वानों ने उपरोक्त मुद्दों के संदर्भ में विभिन्न मत व्यक्त किये थे। कुछ ने उसे विशुद्ध बौद्धिक चिन्तन का विषय माना, तो दूसरों ने उसे केवल एक कार्य या

व्यवसाय माना। कुछ ने लोक प्रशासन की सार्वजनिक हित में परिभाषा या व्याख्या की। दूसरों ने उसका सम्बन्ध केवल प्रशासन से माना। स्पष्ट है कि लोक प्रशासन की कोई सर्वस्वीकृत परिभाषा नहीं दी जा सकी, लेकिन इस सम्मेलन में भाग लेने वाले सभी विद्वान निम्नलिखित बातों पर एकमत थे :

1. लोक प्रशासन के क्षेत्र को स्पष्ट करना उसकी परिभाषा करने के समान ही कठिन है।

2. लोक प्रशासन के विभिन्न अभिकरण नीतियों का निर्माण करते हैं अतः नीति–निर्माण एवं लोक प्रशासन का विभाजन गलत है।

3. एक विषय या अनुशासन के रूप में अमरीकी लोक प्रशासन का सम्बन्ध केवल अमरीका में ही लोक प्रशासन से होना चाहिए।

4. नौकरशाही सम्बन्धी अध्ययन प्रकार्यात्मक एवं संरचनात्मक दोनों ही तरह से किया जाना चाहिए।

5. लोक प्रशासन एवं वाणिज्य प्रशासन का प्रशिक्षण एकसा नहीं होना चाहिए क्योंकि दोनों में केवल महत्त्वहीन बातों की ही समानता पायी जाती है।

6. लोक प्रशासन को व्यवसाय के रूप में राजनीति विज्ञान के अनुशासन एवं व्यवसाय से पृथक होना चाहिए।

7. लोक प्रशासन में आदर्शात्मक प्रशासन सिद्धान्त एवं वर्णनात्मक/विश्लेषणात्मक सिद्धान्त दोनों ही अव्यवस्था की स्थिति में है।

8. संगठनात्मक सत्ता सम्बन्धी पिरामिड के आकार या पदसोपानीय धारणा अब उचित नहीं है। प्रशासकों को काम करने वाले व्यक्तियों को सहयोगी मानना चाहिए, न कि केवल अपना अधीनस्थ। स्मरणीय है कि प्रशासक कार्यपालिका एवं अधीनस्थों के मध्य में होता है। प्रशासकीय अधिकारी अपने अधीनस्थों से अधिक प्रभावित होता है।

9. लोक प्रशासन में प्रबन्ध–पटुता का स्थान एवं राजनीति सम्बन्धी बातें लेती जा रही हैं। स्मरणीय है कि कम्प्यूटर से उपलब्ध सूचना केवल इसलिए ठीक या श्रेष्ठ नहीं मानी जानी चाहिए कि वह कम्प्यूटर से प्राप्त हुई है। पी.पी.बी.एस. (P.P.B.S.) ही राजनीतिक प्रश्नों के विश्वस्त उत्तर देता है। किसी विषय पर निर्णय लेते समय मात्रात्मक एवं मूल्य–विश्लेषण का निर्णय के सन्दर्भ में प्रभावित करने वाले तत्त्वों में प्रमुख स्थान नहीं होता है।

10. भावी प्रशासकों को व्यावसायिक विद्यालयों में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। लोक प्रशासन के पाठ्यक्रम में केवल प्रशासकीय संगठन एवं पद्धति पर ही बल नहीं दिया जाना चाहिए अपितु मनोवैज्ञानिक, वित्तीय, समाजशास्त्रीय एवं मानव शरीर रचना से सम्बन्धित पहलुओं को भी लोक प्रशासन के पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना चाहिए।

11. समाज से सम्बन्धित का लोक प्रशासन कोई उत्तर नहीं दे सका है। अनेक नवीन समस्याओं, यथा वृहद् सैनिक औद्योगिक प्रतिष्ठानों, दंगों, श्रम संघों एवं हड़तालों, सार्वजनिक विद्यालयों सम्बन्धी विवादों, झुग्गी–झोपड़ियों, विज्ञान एवं विकासशील देशों सम्बन्धी प्रश्नों के बारे में लोक प्रशासन मौन है।

12. लोक प्रशासन एक अनुशासन/विषय तो है परन्तु उसके अध्ययन के लिए समकालीन समाजशास्त्रों द्वारा प्रतिपादित सभी अध्ययन पद्धतियों का उपयोग नहीं किया जा सकता। लोक प्रशासन का कुछ भाग तो ऐसा है जिसके सम्बन्ध में वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग सम्भव है लेकिन अन्य भाग के संदर्भ में वैज्ञानिक अध्ययन पद्धति का उपयोग संभव नहीं है। स्मरणीय है कि लोक प्रशासन का यह भाग काफी महत्त्वपूर्ण है। चार्ल्सवर्थ के शब्दों में, ''हम लोक प्रशासन का क्षेत्र काफी सीमित कर दें तो हम वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग कर सकते हैं। लेकिन प्रश्न यह है कि विषय के अति महत्त्वपूर्ण भाग के सम्बन्ध में क्या उसे लागू किया जा सकता है? हम कुछ अंशों के सम्बन्ध में ही वैज्ञानिक हो सकते हैं। स्मरणीय है कि लोक प्रशासन का तो मूल्यों एवं प्रस्तावों से सम्बन्ध है जिन्हें कभी वैज्ञानिक नहीं माना जा सकता।

2.4.6. नवीन लोक प्रशासन से सम्बन्धित मिन्नोब्रुक सम्मेलन : मिन्नोब्रुक सम्मेलन (The Minnowbrook Conference) के जन्म के लिए दो तत्त्व प्रधानतः उत्तरदायी हैं –

1. 1960 का दशक उथल–पुथल का काल था। अनगिनत सामाजिक समस्याएँ थीं लेकिन लोक प्रशासन द्वारा इन समस्याओं को सुलझाना तो दूर की बात थी, उसे उनका ज्ञान तक नहीं था। 1968 में प्रकाशित वाल्डो (Waldo) के एक लेख 'क्रान्तिकाल में लोक प्रशासन' में, जो लोक प्रशासन रिव्यू नामक पत्रिका में प्रकाशित हुआ था, इस समस्या पर प्रकाश डाला गया था।

2. लोक प्रशासन के युवा पीढ़ी के विद्वानों की बात सुनना भी आवश्यक हो गया था क्योंकि पुराने एवं युवा विद्वानों में पीढ़ी का अन्तराल तीव्रता से दिखायी दे रहा था। फिलाडेलफिया सम्मेलन में भाग लेने वाले विद्वान औसतन 35 वर्ष से अधिक आयु के थे। उनमें अधिकांश तो 51 से 69 वर्ष के थे। लेकिन मिन्नोब्रुक सम्मेलन में भाग लेने वाले अपेक्षाकृत कम आयु के अर्थात् युवा थे। यह लोक प्रशासन की युवा पीढ़ी का सम्मेलन था। इस सम्मेलन के परिणामों ने नवीन लोक प्रशासन को जन्म दिया।

2.5. अपनी प्रगति जांचे (Check your progress)

नीचे कुछ प्रश्न दिए गए हैं उनके उत्तर देने का प्रयास करें :–

1. नवीन लोक प्रशासन का जन्म कब हुआ?
2. नवीन लोक प्रशासन के कितने लक्ष्य है?
3. नवीन लोक प्रशासन सम्बन्धित हानि प्रतिवेदन कब पेश किया गया?
4. नवीन लोक प्रशासन सम्बन्धित कितने मिलोबुक सम्मेलन हुए।
5. मिलोबुक सम्मेलन कब–कब हुए?

2.6. सारांश (Summary)

सारांश यह है कि लोक प्रशासन में कुछ ऐसे विशेष लक्षण हैं जो उसे निजी प्रशासन से पृथक् करते हैं। जनता के प्रति उत्तरदायी होना प्रमुख विशेषता है, व्यवहार की समानता व अनुरूपता इसका नारा है, और समाज–सेवा के प्रति जागरूकता इसका आदर्श है। **ऐपल्बी** (Appelby) के अनुसार, ''वे लोग जो सामान्यतया तथा सतत् रूप से शासन के

कार्यों में दिलचस्पी का अनुभव नहीं करते, भविष्य में अच्छे कार्यकर्ता नहीं बन सकते सामान्यतः गैर–सरकारी क्षेत्रों में जितनी आर्थिक सफलता किसी कर्मचारी को प्राप्त होती है उतनी ही उसमें स्वार्थ तथा विचार की ऐसी आदतें विकसित हो जाती हैं जो उसे शासन के अयोग्य बना देती है। स्पष्टतः ऊँची श्रेणी के अधिकारियों के लिए अधिक सूक्ष्म तथा गठित योजनाएँ होना आवश्यक है। उनमें देशभक्ति, जोश तथा बुद्धिमता का होना ही काफी नहीं है जिस प्रकार यह गुण वकीलों में से न्यायाधीश एवं असैनिक व्यक्तियों में से सेनापति के पद हेतु उम्मीदवारों के चयन के लिए उपयुक्त मापदण्ड नहीं हो सकता।'' फिर भी लोक तथा निजी प्रशासन दो भिन्न इकाइयाँ नहीं हैं, बल्कि वे एक ही जाति – प्रशासन – के दो प्रकार हैं। निजी व्यापार को भी सामान्य नियमों के अधीन ही कार्य करना पड़ता है और कुछ विशेष नियम उस पर नियन्त्रण रखते हैं। आजकल निजी प्रशासन में लाभ की प्रवृत्ति ही एकमात्र उत्प्रेरक शक्ति नहीं है, बल्कि अब तो प्रबुद्ध हितों द्वारा उसे अधिक से अधिक सजीव बनाया जा रहा है। वास्तविक अर्थों में निजी प्रशासन आजकल अत्यन्त व्यवस्थित एवं नियमित प्रशासन है और यह नियमन उस सार्वजनिक उत्कण्ठा से प्रस्फटित हुआ है जो उसे समाज के कुछ निर्धारित आदर्शों और महत्वाकांक्षाओं के साथ एकाकार करने का इच्छुक है।

इस अध्याय में नवीन लोक प्रबन्धन और नवीन लोक प्रशासन के बारे में भी विवरण दिया गया है। नवीन लोक प्रबन्धन सरकार की नवीन नीतियों के बारे में या वैश्वीकरण के बारे में सरकार की नीतियों को दर्शाता है। नवीन लोक प्रशासन सरकार में नवीन प्रशासनिक विधियों का विवरण करता है जिससे प्रशासन में नवीनता लाई जा सके और प्रशासनित समस्याओं का निदान किया जा सके।

2.7. सूचक शब्द (Key Words)

लोक प्रशासन, लोक प्रबन्धन, नवीन लोक प्रशासन, विकास प्रशासन

लोक प्रशासन – लोक प्रशासन से हमारा अभिप्राय, सरकार के द्वारा किये जाने वाले प्रशासनिक कार्यों से है।

लोक प्रबन्धन – लोक प्रबन्धन से हमारा अभिप्राय सरकार के द्वारा प्रबन्ध किये कार्य करने से है या योजनाएं बनाने से हैं।

नवीन लोक प्रशासन – नवीन लोक प्रशासन वह प्रशासन है जो प्रशासनिक विकास को दर्शाता है और वर्तमान की आवश्यकताओं को पूरा करता है।

विकास प्रशासन – विकास प्रशासन का प्रारम्भ 70 के दशक के बाद हुआ जो प्रशासन में नवीनता को दर्शाता है।

2.8 स्वयं मूल्यांकन हेतु प्रश्न (Self Assessment Questions) :-

1. लोक प्रशासन के क्षेत्र और विकास को परिभाषित कीजिए ?
2. निजी प्रशासन और लोक प्रशासन में अन्तर तथा समानताओं को दर्शाइए।
3. नवीन लोक प्रबन्धन से आप क्या समझते हैं।
4. लोक प्रशासन के शब्द को परिभाषित करते हुए इसके क्षेत्र को दर्शाइए।
5. लोक प्रशासन के महत्व को दर्शाइए।

2.9. अपनी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर (Answer for check your progress):-

1. 1960–1970 के दशक में
2. 5 लक्ष्य
3. 1967 में
4. 3 मिलोबुक सम्मेलन
5. 1968, 1988, 2008 में

2.10. सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference):-

1. Public Administration, Mcgraw Hill : Laxmi Kant. M
2. New Horizons of Public Administration; Mohit Bhattacharya; Jawahar Publisher & Distribution.
3. Indian Administration; S.R. Maheshwari, Orient Black Swan.
4. Public Administration Theory and Practice; Hoshiar Singh and Pardeep Sachdeva; Pearson.
5. प्रशासनिक चिंतक; प्रसाद एण्ड प्रसाद सत्यनारायण; जवाहर पब्लिकेशन एण्ड डिस्ट्रीब्यूशन।

Subject : लोक प्रशासन	
Course Code :	Author :
Lesson No. : 3	Vetter :
संगठन : अर्थ, आधार और रूप	

अध्याय – 3 संगठन : अर्थ, आधार और रूप

3.1 अधिगम उद्देश्य (Learning Objectives)

3.2. प्रस्तावना (Introduction)

3.3. अध्ययन के मुख्य बिन्दु (Main Point of Text)

3.3.1. संगठन का अर्थ

3.3.2. संगठन के आधार

3.3.3. संगठन के सिद्धान्त

3.4. अध्याय के आगे का प्रमुख भाग (Further Main Body of Text)

3.4.1. पदसोपान का अर्थ,

3.4.2. पदसोपान प्रणाली की व्याख्या

3.4.3. पदसोपान पद्धति के दोष

3.4.4. नियन्त्रण की सीमा : अर्थ, महत्व तथा निर्धारक तत्व

3.4.5. समन्वय

3.5. अपनी प्रगति जांचे (Check your progress)

3.6. सारांश (Summary)

3.7. सूचक शब्द (Key Words)

3.8. स्वयं मूल्यांकन हेतु प्रश्न (Self Assignment Questions)

3.9. अपनी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर (Answer for Check your progress)

3.10. सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference)

3.1 अधिगम उद्देश्य (Learning Objectives)

इस अध्याय में निम्नलिखित विषयों का अध्ययन करेंगे :

- संगठन के अर्थ, परिभाषा तथा अवधारणा के बारे में जानकारी प्राप्त करना।
- संगठन के सिद्धान्तों के बारे में गहन अध्ययन करना।
- नियन्त्रण का प्रशासन में महत्व के बारे में अध्ययन करना।
- समन्वय का प्रशासनिक उद्देश्य प्राप्त करने में योगदान।
- पदसोपान का प्रशासनिक कार्यकलापों में सहयोग के बारे में अध्ययन।
- प्रत्यायोजन का विवरण कीजिए।

3.2. प्रस्तावना (Introduction)

आदिकाल से ही समाज में संगठन मौजूद है। समय के साथ–साथ संगठनों का रूप बदलता गया और आज तो अनेक प्रकार के संगठन मौजूद हैं। संगठनों में कार्यरत व्यक्तियों की संख्या के आधार पर उन्हें बड़ा या छोटा कहा जा सकता है। एक अध्यापक वाला स्कूल छोटा संगठन है और 15 लाख से ज्यादा कार्मिकों वाली भारतीय रेल बड़ा संगठन है। संगठनों के भीतर प्रचलित सम्बन्धों के आधार पर उन्हें सहज या जटिल भी कहा जा सकता है। एक परिवार में सदस्यों के बीच सीधा सम्बन्ध होता है और गतिविधियां सीमित होती है अतः परिवार एक सहज संगठन है जबकि रक्षा मन्त्रालय एक जटिल संगठन है। संगठन औपचारिक और अनौपचारिक भी होते हैं। इस वर्गीकरण का आधार यह है कि एक उद्यम में सरंचना या ढांचा अधिक महत्वपूर्ण है या उसके कर्मचारी।

3.3. अध्ययन के मुख्य बिन्दु (Main Point of Text)

3.3.1. संगठन का अर्थ : सामान्य बोलचाल की भाषा में हम यह कह सकते हैं कि किसी कार्य को योजनाबद्ध ढंग से करना ही संगठन है। ''कार्य आरम्भ करने से पहले उसको भली प्रकार से नियोजित कर लिया जाए, इसी को संगठन कहते हैं।''

जॉन एम. गॉस के अनुसार, ''संगठन का अर्थ है कर्मचारियों की व्यवस्था करना ताकि कार्यों और उत्तरदायित्वों के उचित विभाजन द्वारा निर्धारित उद्देश्य को सरलतापूर्वक पूरा किया जा सके।''

जे. डी. मूने के अनुसार, ''एकसमान ध्येय की प्राप्ति के लिए बनने वाले प्रत्येक मानवीय समुदाय का ढांचा संगठन है।''

लूथर गुलिक के अनुसार, ''संगठन सत्ता का औपचारिक ढांचा है जिसके द्वारा किसी निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्यों को विभाजित तथा निर्धारित किया जाता है और उनका समन्वय किया जाता है।''

संगठन की विशेषताएं – विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गयी उपर्युक्त परिभाषाओं का सावधानीपूर्वक अध्ययन करने के बाद यह कहा जा सकता है कि किसी भी संगठन में निम्नलिखित विशेषताएं होनी चाहिएः

- यह विभिन्न व्यक्तियों का समूह है, चाहे वह छोटा अथवा बड़ा हो।
- यह समूह कार्यकारी नेतृत्व के निर्देशन के अधीन संगठित होकर कार्य करता है।
- यह समूह के उत्तरदायित्वों को परिभाषित करता है।
- यह प्रबन्ध का यन्त्र है। इसके अभाव में प्रबन्ध अपना कार्य व्यवस्थित ढंग से नहीं कर सकता है।
- समूहों के प्रयासों को निदेशन के द्वारा नियन्त्रित किया जाता है।
- यह एक क्रियात्मक अवधारणा है जहां विविध लक्ष्य निर्धारित किये जाते हैं और क्रियान्वित किये जाते हैं।
- यह संरचनात्मक सम्बन्धों को स्थापित करता है।
- यह कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों के स्वरूप को स्थापित करता है।
- इसमें श्रम–विभाजन, अधिकार एवं दायित्वों के विभाजन, आदि का नियोजन किया जाता है।

3.3.2. संगठन के आधार : संगठन विभिन्न व्यक्तियों के बीच कार्य को बांटने की एक रीति है। संगठन का अर्थ है 'कर्मचारियों की ऐसी व्यवस्था करना ताकि कार्यों तथा उत्तरदायित्वों के उचित विभाजन द्वारा निर्धारित उद्देश्य को सुगमता के साथ पूरा किया जा सके।' इस प्रकार संगठन में किसी निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्यों को विभाजित तथा निर्धारित किया जाता है और उनकी क्रियाओं में उचित समन्वय स्थापित किया जाता है। अतः यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि विभाजन किस आधार पर किया जाए तथा विविध क्रियाओं को किस आधार पर कार्य इकाइयों में समूहबद्ध किया जाए ?

अरस्तू ने कार्य–विभाजन के दो तरीके बताए थे : प्रथम, मनुष्यों या श्रेणियों के अनुसार कार्य का विभाजन; तथा द्वितीय, सेवा के अनुसार कार्य का विभाजन। हाल्डेन समिति ने भी अपने प्रतिवेदन में दो ही विकल्प सुझाए थे, सम्बन्धित लोगों तथा वर्गों के अनुसार वितरण; तथा द्वितीय, सम्पन्न की जाने वाली सेवाओं के अनुसार वितरण।

कार्य अथवा उद्देश्य – सरकार विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अनेक कार्य करती है, जैसे – प्रतिरक्षा, शिक्षा का संचालन, यातायात का प्रबन्ध, अपराधों पर नियन्त्रण, जन–स्वास्थ्य की व्यवस्था, पीने के पानी की पूर्ति, आदि। इन कार्यों को करने के लिए विभिन्न संगठनों का निर्माण किया जाता है। उदाहरणार्थ, शिक्षा के लिए विद्यालय तथा महाविद्यालय खोले जाते हैं, न्याय के लिए न्यायालय स्थापित किए जाते हैं, जन–स्वास्थ्य की रक्षा के लिए चिकित्सालय खोले जाते है, आदि।

राष्ट्रीय और स्थानीय सरकारों के प्रमुख विभाग उद्देश्य के आधार पर ही होते हैं। निजी प्रशासन की बड़ी–बड़ी इकाइयों में भी प्रमुख विभाग उद्देश्य के आधार पर ही होते हैं। उद्देश्य के आधार पर विभाग (संगठन) बनाने का मतलब यह होता है कि वे सारे लोग जो किसी एक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए काम करते हैं चाहे उनकी प्रक्रिया कुछ भी क्यों न हो एक ही विभाग के अंग होंगे। जैसे रक्षा विभाग में सैनिक, इन्जीनियर, पशुचिकित्सक सभी रक्षा विभाग के अन्तर्गत ही आते हैं। इस प्रकार के संगठन में एक विभाग से सम्बन्धित सारी सेवाएं एक ही विभाग के नियन्त्रण में आ जाती हैं। अतः विभाग के अधिकारी जैसा उचित समझते हैं वैसी आज्ञाएं देते हैं। उन्हें अन्य विभागों से सहयोग प्राप्त करने में समय नष्ट नहीं करना पड़ता। रक्षा विभाग यदि सड़क बनवाना चाहता है तो अपने इन्जीनियरों को आदेश देता है। यदि चिकित्सा का प्रबन्ध करना चाहता है तो उसके अपने डॉक्टर होंगे। यदि सेना को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना चाहता है तो उसके अपने ड्राइवर और वाहन होंगे।

प्रक्रिया अथवा प्रविधि – प्रशासनिक विभागों को संगठित करने का आधार प्रक्रिया भी हो सकती है। प्रक्रिया जब संगठन का आधार होता है तो ऐसे सारे लोग जो एक ही प्रक्रिया काम में लाते हैं उन्हें एक विभाग में संगठित किया जाता है। प्रक्रिया से तात्पर्य है कि एक विशिष्ट प्रकार के कार्य करने की तकनीक विधि जैसे – इन्जीनियरिंग, डॉक्टरी, सांख्यिकी, स्टेनोग्राफी, आदि।

उद्‌देश्य जब संगठन का आधार होता है तो सारे लोग जो एक ही उद्‌देश्य की प्राप्ति के लिए मुख्य एवं सहायक रूप से काम कर रहे हैं एक विभाग के अन्तर्गत लाए जाते हैं। प्रक्रिया का इसमें कोई ध्यान नहीं रखा जाता। इससे ठीक उलटी स्थिति होती है जब प्रक्रिया संगठन का आधार हो जाता है। इसमें प्रक्रिया की एकता होनी चाहिए। प्रक्रिया एक हो फिर चाहे उस प्रक्रिया का किसी भी उद्‌देश्य के लिए प्रयोग हो उसका एक विभाग होगा। सांख्यिकीविद् चाहे रक्षा विभाग में हो अथवा स्वास्थ्य विभाग में या अन्य किसी विभाग में, वह सांख्यिकी विभाग के अन्तर्गत आएगा।

व्यक्ति – प्रशासनिक संगठन का एक आधार वे व्यक्ति हो सकते हैं जिनकी सेवा की जा रही है। इस पद्धति के अनतर्गत किसी वर्ग विशेष के सदस्यों की समस्याओं का समाधान करने के लिए प्रशासनिक विभागों का संगठन किया जा सकता है। इस प्रकार के विभागों का उदाहरण हमें भारत की केन्द्रीय सरकार में पुनर्वास मन्त्रालय तथा कुछ राज्यों में जन–जाति कल्याण विभागों के रूप में मिलता है, क्योंकि वे क्रमशः शरणार्थियों और जनजातियों की सेवा के लिए बनाए गए हैं। ऐसे विभागों का मूल लक्षण होता है कि वे जिस व्यक्ति समूह की सेवा करते हैं, उनकी समस्त अथवा अधिकांश आवश्यकताओं की पूर्ति का ध्यान रखते हैं। उदाहरणार्थ, भारत में जन–जाति कल्याण विभाग जनजातियों की शैक्षणिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, स्वास्थ्य विषयक तथा अन्य इसी प्रकार की आवश्यकताओं की देखभाल करते हैं।

क्षेत्र या प्रदेश – क्षेत्र के आधार पर बनाए गए संगठनों में ऐसे सभी लोगों को एक ही विभाग में लाया जाता है जो एक ही क्षेत्र में काम करते हैं, जिला प्रशासन क्षेत्र के आधार पर संगठन का उदाहरण है। दामोदर घाटी विकास निगम, उत्तरी–पूर्वी भारत सीमान्त एजेन्सी, विदेश विभाग में उप–विभागों का संगठन इसी आधार पर होता है। ऐसे संगठन में उन सभी लोगों को जो कि किसी एक क्षेत्र विशेष में काम करते हैं, चाहे उनका उद्‌देश्य जो भी हो, प्रक्रिया जो भी हो, सेव्य समुदाय जो भी हो, एक संगठन में संगठित किया जाता है। भारत में पंचायत समिति, पंचायत, आदि क्षेत्र पर आधारित संगठनों के ही नमूने हैं।

3.3.3. संगठन के सिद्धान्त : प्रंशासन का ढांचा किस प्रकार का होता है, यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। इस ढांचे का निर्माण पदसोपान प्रणाली के आधार पर होता है। वस्तुतः यह संगठन में कार्यरत कर्मचारियों के मध्य संगठन के कार्य एवं सत्ता का विभाजन है। इस

विभाजन के फलस्वरूप सत्ता पर आधारित एक ऐसे प्रशासनिक ढांचे का निर्माण होता है जिसमें उच्च अधिकारियों और निम्न अधिकारियों के बीच सम्बन्धों का वर्णन एक सोपानात्मक ढांचे में दर्शाया जाता है। वास्तव में, पदसोपान उच्च एवं अधीनस्थ कर्मचारियों के मध्य स्पष्ट विभेदों का ही नाम है।

3.4. अध्याय के आगे का मुख्य भाग (Further Main Body of Text)

3.4.1. पदसोपान का अर्थ : पदसोपान का शाब्दिक अर्थ है 'श्रेणीबद्ध प्रशासन'। अंग्रेजी में इसे 'हायरार्की' कहते हैं जिसका मतलब है 'निम्नतर पर उच्चतर का शासन अथवा नियन्त्रण।' इस अर्थ में प्रत्येक उच्च अधिकारी अपने तात्कालिक अधीनस्थ कर्मचारियों को आज्ञा देता है। अधीनस्थ अधिकारी उन आज्ञाओं का पालन करते हैं। अर्थात् पदसोपान एक ऐसे संगठन का परिचयाक होता है, जो पदों के एक उत्तरोत्तर क्रम के अनुसार सोपान अथवा सीढ़ी की भांति संगठित किया जाए। पदसोपान का अर्थ है क्रमिक संगठन, जिसमें निम्नस्तरीय व्यक्ति उच्चस्तरीय व्यक्ति अथवा पदाधिकारी के प्रति उत्तरदायी रहते हैं। यही क्रम ऊपर से नीचे तक और नीचे से ऊपर की ओर चलता है। एल.डी. व्हाइट ने पदसोपान की परिभाषा करते हुए लिखा है, ''पदसोपान संगठन के ढांचे में ऊपर से लेकर नीचे तक उत्तरदायित्व के अनेक सोपानों द्वारा उच्च तथा अधीनस्थ सम्बन्धों का सार्वभौमिक प्रयोग ही है।'' अर्ल लाथम के अनुसार, ''पदसोपान निम्न तथा उच्च व्यक्तियों का श्रेणीबद्ध रूप में एक व्यवस्थित संगठन है।'' इस पद्धति को लोक प्रशासन मूं अपनाने का अर्थ है, एक ऐसे संगठन की रचना जिसके अन्तर्गत प्रत्येक पदाधिकारी की कार्यक्षमताओं तथा कर्त्तव्यों का क्षेत्र निश्चित एवं पृथक् कर दिया जाता है और जिसमें आज्ञाओं का सूत्र ऊपर से नीचे की ओर और उत्तरदायित्व का नीचे से ऊपर की ओर चलता है।

3.4.2. पदसोपान प्रणाली की व्याख्या : पदसोपान प्रणाली संगठन का एक सर्वव्यापी महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। इसका प्रयोग सभी प्रकार के संगठनों में किया जाता है। डॉ. एम.पी. शर्मा के अनुसार, ''यह एक धागा है जिसके द्वारा विभिन्न हिस्से एक साथ सिले जाते हैं।'' साइमन, स्मिथबर्ग और थॉम्पसन के अनुसार, ''पदसोपान सुविधाजनक है, उद्देश्यों को कार्य–विभाजन द्वारा प्राप्त करवाता है तथा मतभेदों को दूर करके संगठन में सामंजस्य करता है।''

पदसोपान सिद्धान्त में निम्नलिखित गुण पाए जाते हैं :

- **आदेश की एकता सिद्धान्त का पालन** – इस सिद्धान्त का सर्वाधिक महत्वपूर्ण गुण यह है कि इसमें आदेश की एकता के सिद्धान्त को अपनाया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति को इस बात की जानकारी रहती है कि उसका तत्कालीन उच्च अधिकारी कौन है जिसकी आज्ञा का उसे पालन करना है। प्रत्येक कर्मचारी केवल एक ही व्यक्ति के अधीन रहकर कार्य करता है और उसी के प्रति उत्तरदायी रहता है। इससे संगठन का कार्य सुचारू रूप से चलता है।

- **नेतृत्व का निर्धारण** – संगठन को पदसोपान द्वारा भिन्न–भिन्न स्तरों में विभाजित करके यह निश्चित कर दिया जाता है कि कौन किसका नेतृत्व करेगा तथा निर्णयों के लिए कौन उत्तरदायी होगा।

- **समग्रीकरण** – पदसोपान से संगठन की इकाइयां परस्पर एकीकृत (Integrated) और सुसम्बद्ध रहती हैं।

- **उचित मार्ग द्वारा कार्य** – इसके द्वारा प्रशासन और कार्यालयीन पद्धति के महत्वपूर्ण सिद्धान्त 'उचित मार्ग द्वारा' (Through Proper Channel) का विकास हुआ है। इस पद्धति में प्रत्येक मामला हर स्तर में से गुजरता हुआ ऊपर तक पहुंचता है। इसका बड़ा लाभ यह है कि इससे उच्च अधिकारियों के बहुमूल्य समय की बड़ी बचत होती है।

- **उत्तरदायित्व का प्रत्यायोजन** – इस प्रक्रिया द्वारा उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को अपनी कुछ शक्तियां हस्तान्तरित अथवा प्रत्यायोजित (Delegation of Authority) कर देता है। इसे सत्ता का प्रत्यायोजन कहते हैं। इससे सत्ता का विकेन्द्रीकरण हो जाता है, और निचले स्तरों पर आवश्यक कार्य किए जाने से सर्वोच्च अधिकारी का कार्यभार बहुत हल्का हो जाता है, वह अधिक दक्षतापूर्वक अपने संगठन का संचालन कर सकता है।

- **प्रशासन में सूचना माध्यम का कार्य** – इसके अन्तर्गत प्रशासन के संगठन की विभिन्न सोपानें सूचना माध्यम के रूप में कार्य करती हैं। इसके द्वारा ऊपर से नीचे तथा नीचे से ऊपर की ओर संचार का मार्ग प्रशस्त किया जाता है। इसके द्वारा प्रत्येक कर्मचारी को यह मालूम हो जाता है कि उसको अपने कार्यों में किस प्रकार आगे बढ़ना चाहिए।

- **समन्वय** – यह सिद्धान्त समूचे विभाग की कार्यवाहियों में समन्वय स्थापित करने में सफल होता है। चूंकि सत्ता के अन्तिम सूत्र शिखर के अधिकारी के पास रहते हैं,

इसलिए वह विभाग की विभिन्न शाखाओं की गतिविधियों में तालमेल (Co-ordination) बैठा सकता है।

3.4.3. पदसोपान पद्धति के दोष : पदसोपान सिद्धान्त में कतिपय दोष भी पाए जाते हैं जिससे इस सिद्धान्त की बहुत आलोचना हुई है। इसके प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं :

- **कार्य में विलम्ब** – इस पद्धति का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसमें कार्य में विलम्ब होता है। इसमें प्रत्येक पत्रावली को हर स्तर के अधिकारियों के माध्य से होकर गुजरना होता है, प्रत्येक अधिकारी के यहां पत्रावली पर आवश्यक कार्यवाही करने में कुछ समय लगता है। अतः इस पद्धति में निर्णय लेने में काफी देर लग जाती है।

- **लालफीताशाही तथा नौकरशाही** – पदसोपान का एक दोष यह भी है कि इसके अन्तर्गत लालफीताशाही और नौकरशाही में वृद्धि होती है।

- **औपचारिक सम्बन्धों पर आधारित** – इस पद्धति में नियमों पर बल दिए जाने के कारण बड़ी कठोरता आ जाती है, सौहर्दपूर्ण मानवीय सम्बन्धों का विकास नहीं होने पाता है। प्रत्येक मामले पर तभी विचार और आवश्यक कार्यवाही की जाती है, जब वह 'उचित माध्यम' से उच्च अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किया जाए। कई बार इसके बड़े घातक परिणाम होते हैं। इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण 1945 में पर्ल हार्बर की भीषण दुर्घटना है। इस विषय में यह कहा जाता है कि अमरीकी बेड़े के सर्वोच्च सेनापति को जापानी सेना की गतिविधियों की सूचना तो जापानी आक्रमण से पहले ही मिल गयी थी, किन्तु वह सूचना उचित माध्यम की न होने के कारण सेनापति ने उसके सम्बन्ध में कोई आवश्यक कार्यवाही नहीं की थी।

- **लचीलेपन का अभाव** – इससे प्रशासनिक संगठन में लचीलापन नहीं रह पाता जिसके कारण संगठन के लोगों में आपसी जीवन्त सम्बन्धों का भली–भांति विकास नहीं हो पाता है।

3.4.4. नियन्त्रण की सीमा : अर्थ, महत्व तथा निर्धारक तत्व : नियन्त्रण की सीमा, क्षेत्र या विस्तार का सम्बन्ध इस बात से है कि उच्च पदाधिकारी अपने अधीन कितने कर्मचारियों के कार्य का नियन्त्रण कर सकता है। नियन्त्रण की सीमा वास्तव में निगरानी की सीमा है। संगठन में सोपानों की संख्या वास्तव में इसी से निर्धारित होती है। नियन्त्रण का विस्तार क्षेत्र उन अधीनस्थों या संगठन की इकाइयों की संख्या है जिनका निदेशन

प्रशासन स्वयं करता है। यह अवधारणा वी. ग्रेक्यूनस द्वारा वर्णित 'ध्यान के विस्तार क्षेत्र' (Span of Attention) के सिद्धान्त से सम्बन्धित है। मानवीय क्षमता की भी सीमाएं होती हैं। यदि निरीक्षण का क्षेत्र बहुत अधिक विस्तृत कर दिया जाता है तो उसके परिणाम असन्तोषजनक होते हैं। अतः विद्वानों ने यह खोज की है कि विस्तार क्षेत्र की सीमा क्या होनी चाहिए ? कुछ इसे तीन व्यक्तियों तक, कुछ सात तक और अन्य कुछ बीस व्यक्तियों तक सीमित करते हैं। एक अधिकारी के अधीन कितने अधीनस्थ होने चाहिए इस पर कोई एक मत नहीं है, किन्तु यह सभी मानते हैं कि विस्तार क्षेत्र जितना छोटा होगा उतना ही सम्पर्क तथा नियन्त्रण अधिक प्रभावशाली होगा।

नियन्त्रण के क्षेत्र का महत्व – नियन्त्रण के क्षेत्र की समस्या सोपानक्रम वाले संगठनों में पायी जाती है जहां एक के बाद एक कई स्तर और सीढ़ियां होती है। प्रत्येक स्तर की जिम्मेदारी किसी एक व्यक्ति पर होती है। किसी संगठन में कितने स्तर होने चाहिए, यह इस बात पर निर्भर करता है कि उस संगठन में निचले स्तर पर कर्मचारी कितने हैं जिनका निरीक्षण किया जाना है और प्रत्येक वरिष्ठ अधिकारी कितने अधीनस्थों का कारगर ढंग से निरीक्षण कर सकता है। इससे पता चलता है कि पदसोपान एवं नियन्त्रण के क्षेत्र में निकट का सम्बन्ध है। इसलिए किसी संगठन में एक वरिष्ठ अधिकारी के नियन्त्रण के क्षेत्र को ध्यान में रखकर पदसोपान में स्तरों की सीढ़ियों का निर्धारण किया जाना चाहिए। यदि किसी वरिष्ठ अधिकारी से उसकी क्षमता से अधिक संख्या में कर्मचारियों के नियन्त्रण की उम्मीद की जाएगी तो उससे कार्य में विलम्ब होगा और अकुशलता बढ़ेगी। किसी संगठन के कार्य की गुणवत्ता उसके कारगर नियन्त्रण और निरीक्षण पर निर्भर करती है।

नियन्त्रण की सीमा क्या होनी चाहिए – संगठन में नियन्त्रण की आवश्यकता स्वयंसिद्ध है। बिना नियन्त्रण के प्रशासन सुचारू रूप से संचलित नहीं किया जा सकता। कर्मचारियों पर नियन्त्रण रखने का उद्‌देश्य यह देखना रहता है कि कर्मचारी दिए गए आदेशों एवं निर्देशों के अनुसार कार्य कर रहे हैं या नहीं ? यह तो सर्वमान्य है कि मानवीय ध्यान क्षेत्र सीमित होता है। अतएव एक पदाधिकारी अपने नीचे काम करने वाले कितने कर्मचारियों पर भली–भांति निरीक्षण रख सकता है, इसकी भी सीमा होती है। मिलेट के शब्दों में, ''अनुभव एवं मनोवैज्ञानिक अनुसन्धान दोनों ने इस बात की पुष्टि की है कि किसी भी प्रशासनिक अधिकारी की पर्यवेक्षण क्षमता की सीमा रहती है।'' परन्तु यह सीमा कितनी

होनी चाहिए, इस प्रश्न पर विद्वानों में मतभेद हैं। फेयोल के अनुसार, ''एक बड़े उद्यम के शिखर स्थित प्रबन्धक के नीचे पांच या छः से अधिक अधीनस्थ कर्मचारी नहीं होने चाहिए।'' उर्विक की सम्मति में, ''उच्च पदाधिकारियों के लिए आदर्श संख्या चार होगी और निम्न स्तर के कर्मचारियों के लिए आठ या बारह।'' ग्रेक्यूनस के शब्दों में ''कोई उच्च अधिकारी पांच या छः अधीनस्थ कर्मचारियों से अधिक के कार्य का उचित निरीक्षण नहीं रह सकता।'' सर हैमिल्टन के मत में, ''एक औसत मानवी मस्तिष्क तीन से छः अन्य मस्तिष्कों का ही प्रभावशाली निरीक्षण कर सकता है।''

नियन्त्रण की यह सीमा नीचे से प्रारम्भ होती है। उदाहरण के लिए, एक पुलिस विभाग में सबसे निम्न श्रेणी के 1.000 कॉन्स्टेबल हैं और वहां की परिस्थितियों के अनुकूल वहां 'स्पान ऑफ कण्ट्रोल' 5 है तो वहां पदसोपान निम्न प्रकार होगा :

प्रत्येक 1,000 कॉन्स्टेबल पर 200 हवलदार आवश्यक होंगे। 40 असिस्टेण्ट इन्स्पेक्टर, 8 इन्स्पेक्टर, 2 डी.एस.पी. तथा एक एस.पी. चाहिए।

नियन्त्रण की सीमा के निर्धारक तत्व – इस प्रकार नियन्त्रण क्षेत्र की सीमा के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। वास्तव में, कोई आदर्श संख्या निश्चित नहीं की जा सकती। व्यवहार में नियन्त्रण का क्षेत्र कुछ तत्वों पर निर्भर करता है। ये तत्व है : 1. कार्य (Function), 2. समय (Time), 3. स्थान (Place), और 4. व्यक्तित्व (Personality)।

यदि मुख्य कार्यकारी ऐसे व्यक्तियों का नियन्त्रण कर रहा है जिनके कार्यों की प्रकृति उसके अपने कार्य की प्रकृति के ही समान है, तो नियन्त्रण का क्षेत्र विस्तृत हो सकता है। अर्थात् वह उच्च अधिकारी अधिक अधीनस्थ कर्मचारियों के काम पर नियन्त्रण रख सकता है। उदाहरणार्थ, एक डॉक्टर अन्य डॉक्टरों पर उनकी ज्यादा संख्या होने पर नियन्त्रण रख सकता है, जबकि एक डॉक्टर के लिए विश्वविद्यालय के समस्त विभागों पर नियन्त्रण रखना कठिन होगा। इस प्रकार यदि संगठन पुराना, स्थायी और जमा हुआ है, तो नियन्त्रण के क्षेत्र को विस्तृत किया जा सकता है। यदि अधीनस्थ कर्मचारियों के कार्यालय भौगोलिक दृष्टि से दूर–दूर तक फैले हैं तो नियन्त्रण क्षेत्र छोटा रखना ही उचित होगा। इसके विपरीत, यदि वे एक ही भवन या स्थान में हों तो नियन्त्रण क्षेत्र विस्तृत किया जा सकता है। अधीक्षक और प्रधान कार्यकारी की क्षमता तथा व्यक्तित्व भी नियन्त्रण क्षेत्र को प्रभावित करते हैं। कोई भी स्फूर्तिवान और योग्य प्रशासनिक कार्यकारी अपेक्षाकृत कम क्षमतावान सहयोगी की अपेक्षा अधिक क्षेत्र का नियन्त्रण और निरीक्षण कर सकता है।

3.4.5. समन्वय : 'समन्वय संगठन का निर्धारक सिद्धान्त है, वह रूप है जो अन्य सभी सिद्धान्तों का समावेश करता है, सभी संगठित प्रयासों का प्रारम्भ एवं अन्त है।''

साधारण भाषा में समन्वय से तात्पर्य है संगठन के कार्यकलापों एवं गतिविधियों में उचित सम्बन्ध, समायोजन तथा तालमेलस्थापित करना। व्हाइट के अनुसार, ''समन्वय का अर्थ है विभिन्न भागों का परस्पर समायोजन एवं उसकी गतिविधियों तथा क्रियाओं का भी समय पर समायोजन ताकि प्रत्येक भाग पूर्ण के उत्पादन के लिए अपना अधिकतम योगदान कर सके।''

समन्वय और सहयोग – यहां यह उल्लेखनीय है कि समन्वय और सहयोग एक ही नहीं है। समन्वय को सहयोग समझ लेना एक भूल होगी। टेरी के शब्दों में, ''सहयोग किसी सामान्य लक्ष्य की प्राप्ति के लिए व्यक्ति का दूसरे या दूसरों के साथ सामूहिक कार्य है। समन्वय सामूहिक कार्य से कहीं अधिक है और इसका अर्थ है 'प्रयत्नों की समकालिकता' अर्थात् प्रयत्न एक ही समय होने चाहिए।'' सहयोग और समन्वय के अन्तर को टेरी ने एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया है – एक लड़का था। वह एक दिन प्रातः ही रेलगाड़ी पकड़ना चाहता था। इसके लिए सोने से पूर्व उसने अपनी घड़ी को आधा घण्टे आगे कर दिया ताकि वह जल्द उठ सके। लड़के का पिता यह जानता था कि उसका लड़का सवेरे रेलगाड़ी पकड़ेगा, उसने सोचा कि लड़के को सवेरे उठने और कपड़े पहनने में समय लगेगा, इसलिए उसने घड़ी को आधा घण्टा आगे कर दिया ताकि लड़के को प्रातः जल्दी न करनी पड़े। फल यह हुआ कि आधा घण्टा पहले उठने की अपेक्षा लड़का डेढ़ घण्टे पहले उठ गया और उसकी एक घण्टे की नींद मारी गयी। टेरी के शब्दों में, ''यहां माता, पिता तथा बेटे के कार्यों में सहयोग तो था, लेकिन समन्वय न था।'' इसी प्रकार अन्य उदाहरण पुस्तकालय में पुस्तकों की खरीद का दिया जा सकता है। एक नवनिर्मित पुस्तकालय में एक लाख रूपए की पुस्तकों के क्रय हेतु आदेश एक फर्म को दिए गए, किन्तु उसने पुस्तकों की शीघ्र पूर्ति नहीं की। इसके बाद दूसरी और तीसरी फर्मों को क्रमशः आदेश दिए गए। वहां से पुस्तकें आने में विलम्ब हुआ। एक दिन अचानक पुस्तकालय पक्ष क्या देखते हैं कि तीनों फर्मों ने पुस्तकों की बिल्टियां भेज दी हैं। समुचित समन्वय के अभाव में वे कठिनाई में फंस गए कि किस फर्म की पुस्तकें रखें और किसको लौटाएं। स्पष्टतः यहां तीन फर्मों के कार्यों में सहयोग तो था, किन्तु समन्वय नहीं था।

इससे यह नहीं समझना चाहिए कि समन्वय और सहयोग विरोधी अवधारणाएं हैं। वस्तुतः समन्वय और सहयोग दोनों पूरक हैं। समन्वय एवं सहयोग के बीच सम्बन्ध को हैमेन ने इस प्रकार व्यक्त किया है, ''यद्यपि सहयोग हमेशा सहायतापूर्ण रहता है और इसका अभाव समन्वय की प्रत्येक सम्भावना रोक सकता है, पर इसका अस्तित्व मात्र ही समन्वय का होना साबित नहीं करता। महत्व की दृष्टि से समन्वय सहयोग की अपेक्षा अधिक उच्च है।''

समन्वय की विधियां – संगठन में समन्वय स्थापित करने की प्रधानतः दो विधियां हैं – औपचारिक तथा अनौपचारिक। अनेक औपचारिक तरीकों द्वारा संगठन स्थापित करने का कार्य किया जाता है। **प्रथम,** औपचारिक तरीका नियोजन है। कार्यक्रम और व्यवहारों का पहले से ही नियोजन समन्वय का एक महत्वपूर्ण साधन है। कुछ लेखकों के अनुसार तो नियोजन राष्ट्रीय स्तर पर समन्वय का एक प्रयास है। हमारे देश में योजना आयोग तथा पंचवर्षीय योजनाएं सम्पूर्ण आर्थिक क्रियाकलापों का समन्वय ही है। द्वितीय, औपचारिक तरीका कतिपय संगठनात्मक तरीके होते हैं जिन्हें संस्थागत रूप देकर समन्वय का मार्ग सुगम बनाया जाता है। लोक प्रशासन के विभिन्न क्षेत्रों में सम्मेलन, समितियां, गोष्ठियां, अन्तर–विभागीय समीतियां, आदि कुछ ऐसे साधन होते हैं जिनके आधार पर संगठन के मतभेदों को दूर कर उनमें एकरूपता स्थापित की जा सकती है। भारत में प्रशासनिक समन्वय स्थापित करने वाले संगठनात्मक साधन कई प्रकार के हैं। योजना आयोग, क्षेत्रीय परिषदें, राष्ट्रीय विकास परिषद्, केन्द्रीय सचिवालय, मन्त्रिमण्डल की समितियां, आदि समन्वय के कार्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। तृतीय, औपचारिक तरीका मन्त्रिमण्डल तथा मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय है। प्रशासन में जितने महत्वपूर्ण विवाद उठते हैं उनके समाधान का मुख्य उत्तरदायित्व मन्त्री पर होता है, किन्तु इस दिशा में असमर्थ होने पर ही विवादास्पद मामले को मन्त्रिमण्डल के सामने रख देता है। जिन महत्वपूर्ण विषयों में मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय समन्वय के प्रयास करता है उनका सम्बन्ध प्रायः भारत सरकार या राज्य सरकारों के बीच प्रशासनिक क्षेत्रों में उत्पन्न होने वाली विभिन्न कठिनाइयों से रहता है। समन्वय का चतुर्थ, औपचारिक तरीका अन्तर्विभागीय समितियां हैं। ये समितियां प्रशासन के विभिन्न स्तरों में प्रयुक्त की जाती है। अन्तर्विभागीय बैठकें, सम्मेलन तथा गोष्ठियों द्वारा भी समन्वय स्थापित किया जाता है। भारत में केन्द्रीय स्तर पर राज्यपालों, मुख्य मन्त्रियों, खाद्य मन्त्रियों, आदि के सम्मेलनों द्वारा भी समन्वय का प्रयास सदैव होता

रहता है। राज्य स्तर पर भी जिला कलक्टरों के सम्मेलनों द्वारा समन्वय किया जाता है। समन्वय का पंचम, औपचारिक तरीका वित्त मन्त्रालय है। प्रशासनिक विभाग वित्त मन्त्रालय से अपनी वित्त सम्बन्धी मांगें प्रस्तुत करते हैं और ऐसा करने में वे परस्पर समन्वयात्मक दृष्टिकोण अपनाते हैं। यदि विभाग की प्रक्रियाओं में परस्पर विरोध हो और हितों का टकराव हो तो वित्त मन्त्रालय का अंकुश उन्हें रास्ते पर ले आता है। समन्वय का छठा, औपचारिक तरीका गृहपालन क्रियाएं है। फिफनर तथा प्रेस्थस ने लिखा है कि ''प्रशासन में गृहपालन समस्या के अन्तर्गत प्रायः प्रदाय या पूर्ति, भण्डारागार–भवनों की सफाई और मरम्मत, छपाई, उपकरणों का नियन्त्रण, केन्द्रीय डाक, परिवहन, खाद्य तथा टेलीफोन सेवा सम्मिलित हैं।'' यदि इन सभी सेवाओं को एक पृथक् सम्भाग में केन्द्रित कर दिया जाए तो जो भी विभाग इससे लाभान्वित होने चाहिए, उनके बीच स्वतः ही समन्वय स्थापित हो जाएगा। भारत में केन्द्रीकृत गृहपालन के अन्तर्गत अनेक अभिकरण हैं, जैसे – महालेखा परीक्षक के अधीन लेखांकन एवं लेखा परीक्षक, सार्वजनिक निर्माण विभाग के अन्तर्गत भवनों का निर्माण, मरम्मत, आदि। समन्वय का सातवां, औपचारिक तरीका संचार साधन है। संचार साधनों द्वारा लिखित या अलिखित सूचनाओं, आज्ञाओं, निर्देशों, आदि को एक अधिकारी से दूसरे अधिकारी तक पहुंचाया जाता है। सूचनाओं का प्रसार जितना अधिक प्रभावशाली होता है, समन्वय की प्रक्रिया उतनी ही सुगम बन जाती है। हैमेन ने लिखा है कि 'उत्तम संचार विभिन्न क्रियाओं के समन्वय में अतुल सहायता पहुंचाते हैं।''

समन्वय की बाधाएं – समन्वय का कार्य सरल नहीं है। समन्वय के मार्ग में निम्नलिखित बाधाएं हैं : (i) संगठनों का आशातीत विकास समन्वय के मार्ग को जटिल बनाता है। कार्य अधिक बढ़ जाने से समन्वय स्थापित करना भी कठिन बन गया है। संगठन बड़ा होने से अधीनस्थ कर्मचारियों की संख्या अधिक हो जाती है तथा संचार साधनों की समस्या जटिल बन जाती है, अतः समन्वय का कार्य अत्यन्त कठिन हो जाता है। (ii) समन्वय के मार्ग को जटिल बनाने वाली एक समस्या विशेषीकरण से सम्बन्धित है। वर्तमान संगठन में वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकासों के परिणामस्वरूप यह आवश्यक हो गया है कि कार्यों को विशेषज्ञों में विभाजित कर दिया जाए। ये विशेषज्ञ केवल अपने कार्य में ही संलग्न रहते हैं अतः उनके बीच समन्वय स्थापित करना एक प्रमुख समस्या है। संक्षेप में, समन्वय के मार्ग में निम्न बाधाएं हैं : लोक प्रशासन के आकार में वृद्धि, नवीन आवश्यकताओं तथा मांगों का प्रचार करने के लिए नए अभिकरणों की रचना करने की

बढ़ती हुई प्रवृति, नियन्त्रण के विस्तार का संकुचित होना, कार्य को अपने से ऊपर के अधिकारी पर छोड़ने की अधीनस्थों की प्रवृत्ति, अधिकारी की ओर से अधिकारों के विकेन्द्रीकरण का अभाव, आदि।

लेकिन कुछ विचारक ऐसे हैं जो समन्वय के अभाव की आलोचना नहीं करते, अपितु वे वस्तुतः उसका स्वागत करते हैं। इनमें हरनल क्लीवलैण्ड का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनके द्वारा प्रतिपादित 'तनाव सिद्धान्त' (Tension Theory) के अनुसार एक सरल और सुगम संगठन में किया जाने वाला समन्वय अधिक अच्छा नहीं होता। यदि किसी संगठन में विवाद उत्पन्न नहीं होते तो वहां इस प्रकार के झगड़ों को योजनाबद्ध रूप से प्रारम्भ करना चाहिए। संगठन में झगड़े उत्पन्न होने से अनेक प्रशासनिक विषयों का रूप स्पष्ट होता है और अनेक समस्याओं पर महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किए जाते हैं।

3.5. अपनी प्रगति जांचे (Check your progress)

नीचे कुछ प्रश्न दिए गए हैं उनके उत्तर देने का प्रयास करें :—

1. लूथर गुलिक ने पदसोपान के कितने सिद्धान्त बताए हैं?
2. लूथर गुलिक के अनुसार संगठन के कितने आधार हैं?
3. नियन्त्रण की सिमांके निर्धारक तत्व कितने हैं?
4. POSDCORB का सिद्धान्त किसने दिया।
5. POCCC का सिद्धान्त किसने दिया।

3.6. सारांश (Summary)

इस अध्याय को पढ़ने के बाद हम संगठन को अच्छी तरह समझ पाएं हैं। संगठन का हमारे प्रशासनिक कार्यों में अहम योगदान है। संगठन ही प्रशासन का वह भाग है जिसमें कार्यों को अलग—अलग विभागों में बांटने के बाद उनके उत्तरदायित्व को निश्चित किया जाता है।

हमारे प्रशासनिक क्रियाकलापों में पदसोपान की भूमिका को भी नकारा नहीं जा सकता क्योंकि पदसोपान ही वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कार्यों को अलग—अलग अधिकार्यों में विभाजित किया जाता है ताकि कार्यों में विशेषीकरण का समावेश हो सके और अधिकारियों के उत्तरदायित्वों को निश्चित किया जा सके।

प्रशासनिक कार्यकलापों में नियन्त्रण भी होना अति आवश्यक है। यदि हमारे प्रशासनिक अधिकारियों पर नियन्त्रण नहीं होगा तो वे जनता के रक्षक न बनकर उनके

भक्षक बन जाऐंगे। इसलिए प्रशासनिक अधिकारियों पर और प्रशासनिक कार्यकलापों पर नियन्त्रण होना अति आवश्यक है।

प्रशासनिक कार्यों में नियन्त्रण होने के साथ–साथ समन्वय होना भी अति आवश्यक है क्योंकि समन्वय ही वह जरिया है जिसके द्वारा कार्यों को या निर्णयों को उच्च अधिकारी से लेकर निम्न कार्यकारी तक पहुंचाया जाता है जिससे कार्यों में एकता का समावेश भी होता है।

प्रशासनिक कार्यों में विकेन्द्रीकरण का होना भी अति आवश्यक है क्योंकि उच्च अधिकारी पर सभी निर्णय लेने के लिए दबाव आएगा तो प्रशासनिक कार्यों में लाल फिताशाही का समावेश होगा जिससे निर्णय लेने में और प्रशासनिक कार्यों को त्वरित गति लाने में कठिनाई का सामना करना पडेगा इसलिए प्रशासनिक कार्यों में विकेन्द्रकरण के साथ–साथ प्रत्यायोजन का होना भी अति आवश्यक है।

3.7. सूचक शब्द (Key Words)

संगठन के सिद्धान्त, नियन्त्रण, समन्वय, विकेन्द्रीकरण, प्रत्यायोजन, पदसोपान

संगठन – संगठन हमारे प्रशासन का वह भाग है जिसमें कार्यों और प्रशासनिक मशीनरी का समावेश होता है जो हमारे उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए उत्तरदायि होता है।

नियन्त्रण – नियन्त्रण से हमारा अभिप्राय उस प्रक्रिया से है जिसमें प्रशासनिक कार्यों का निरीक्षण और पर्यवेक्षण किया जाता है।

समन्वय – समन्वय से हमारा अभिप्राय प्रशासनिक कार्यों की उस प्रक्रिया से है जिसमें विभिन्न कार्यों को एकता के साथ करने का प्रयास किया जाता है।

विकेन्द्रीकरण – विकेन्द्रीकरण से हमारा अभिप्राय उस प्रक्रिया से है जिसमें कार्यों को अलग–अलग भागों में बांटा जाता है जिससे उत्तरदायित्व भी निश्चित होते हैं।

प्रत्यायोजन – प्रत्यायोजन से हमारा अभिप्राय उस प्रक्रिया से है जिसमें कार्यों को उच्च अधिकारी से निम्न अधिकारी को सौंपा जाता है।

पदसोपान – पदसोपान प्रशासन की वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कार्यों को एक चैन प्रणाली में विभाजित किया जाता है।

3.8 स्वयं मूल्यांकन हेतु प्रश्न (Self Assessment Questions) :-

1. संगठन के अर्थ व परिभाषा की व्याख्या कीजिए ?
2. संगठन के सिद्धान्तों को समझाइए ?
3. नियन्त्रण के क्षेत्र को परिभाषित कीजिए ?
4. प्रत्यायोजन से आप क्या समझते हैं, इसके आधार क्या हैं ?
5. संगठन में समन्वय का क्या महत्व है ?

3.9. अपनी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर (Answer for check your progress):-

1. 14 सिद्धान्त।
2. 4 आधार
3. 4 तत्व है
4. लूथर गुलिक ने
5. हेनरी फेयोल ने

3.10. सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference):-

1. Public Administration, Mcgraw Hill : Laxmi Kant. M
2. New Horizons of Public Administration; Mohit Bhattacharya; Jawahar Publisher & Distribution.
3. Indian Administration; S.R. Maheshwari, Orient Black Swan.
4. Public Administration Theory and Practice; Hoshiar Singh and Pardeep Sachdeva; Pearson.
5. प्रशासनिक चिंतक; प्रसाद एण्ड प्रसाद सत्यनारायण; जवाहर पब्लिकेशन एण्ड डिस्ट्रीब्यूशन।

Subject : लोक प्रशासन	
Course Code :	Author :
Lesson No. : 4	Vetter :
मुख्य कार्यपालिका : अर्थ, प्रकार, कार्य तथा भूमिका	

अध्याय – 4 मुख्य कार्यपालिका : अर्थ, प्रकार, कार्य तथा भूमिका

4.1 अधिगम उद्देश्य (Learning Objectives)

4.2. प्रस्तावना (Introduction)

4.3. अध्ययन के मुख्य बिन्दु (Main Point of Text)

4.3.1. मुख्य कार्यपालिका का अर्थ, परिभाषा तथा प्रकार

4.3.2. मुख्य कार्यपालिका की भूमिका

4.3.3. मुख्य कार्यपालिका की आवश्यकता

4.4. अध्याय के आगे का प्रमुख भाग (Further Main Body of Text)

4.4.1. सूत्र तथा स्टाफ

4.4.2. सूत्र अभिकरण

4.4.3. स्टाफ अभिकरण

4.4.4. स्टाफ अभिकरण के कार्य

4.4.5. सूत्र अभिकरण : विभाग

4.4.6. नागरिक सम्बन्ध का अर्थ

4.4.5. नागरिक सम्बन्ध का महत्व

4.5. अपनी प्रगति जांचे (Check your progress)

4.6. सारांश (Summary)

4.7. सूचक शब्द (Key Words)

4.8. स्वयं मूल्यांकन हेतु प्रश्न (Self Assignment Questions)

4.9. अपनी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर (Answer for Check your progress)

4.10. सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference)

4.1 अधिगम उद्देश्य (Learning Objectives)

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप निम्न विषयों को समझ पाओगे :

- मुख्य कार्यपालिका का अर्थ तथा परिभाषा का अध्ययन करना।
- सूत्र अभिकरणों का भारतीय प्रशासन में सहयोग को समझना।
- स्टाफ अभिकरणों तथा सूत्र अभिकरणों में अन्तर का अध्ययन करना।
- नागरिक सम्बन्धों का प्रशासन में क्या महत्व है।
- सूत्र अभिकरण तथा सहायक अभिकरणों में सम्बन्धों की व्याख्या कीजिए।

4.2. प्रस्तावना (Introduction)

मुख्य कार्यपालिका से हमारा तात्पर्य उस व्यक्ति या व्यक्ति समूह से होता है जो किसी देश की प्रशासनिक व्यवस्था का अध्यक्ष होता है। राजकीय इच्छा की अभिव्यक्ति कार्यपालिका द्वारा होती है। प्रत्येक राज्य का प्रशासनिक संगठन पिरैमिड प्रकार का जिसमें आधार की व्यापकता ऊपर की ओर अग्रसर होते हुए शनैः शनैः इतनी सीमित होती जाती है कि त्रिकोण के दोनों भाग एक बिन्दु पर जाकर मिल जाते हैं। मुख्य कार्यपालिका इसी प्रशासनिक पिरैमिड का शिखर है। डिमॉक के अनुसार, ''मुख्य कार्यकारी कठिनाइयों का अन्त करने वाला, पर्यवेक्षक तथा आगामी कार्यक्रम का प्रवर्तक होता है।'' कहीं पर राजा मुख्य प्रशासक होता है; जैसे – इंग्लैण्ड में, कहीं पर राष्ट्रपति जैसे, भारत तथा अमरीका में और कहीं पर उसका स्वरूप एक समिति का होता है जैसे, स्विट्जरलैण्ड में। मुख्य कार्यपालक केवल राष्ट्रीय स्तर पर नहीं होते, संघात्मक शासन व्यवस्था में वे प्रान्तीय तथा स्थानीय स्तर पर भी पाए जाते हैं। कहीं पर वे बर्गोमास्टर (जर्मनी), मेयर (इंग्लैण्ड, अमरीका), आदि कहलाते हैं तो कहीं पर वे सिटीफादर, प्रेसीडेण्ट, चेयरमैन आदि कहलाते हैं। परन्तु राष्ट्रीय स्तर के मुख्य प्रशासक की शक्तियां इतनी व्यापक होती हैं कि ये सब उससे ही शक्तियां प्राप्त करते हैं।

4.3. अध्ययन के मुख्य बिन्दु (Main Point of Text)

4.3.1. मुख्य कार्यपालिका का अर्थ, परिभाषा तथा प्रकार – मुख्य कार्यपालिका का तात्पर्य उस व्यक्ति से होता है जो किसी देश की प्रशासकीय व्यवस्था का अध्यक्ष होता है। राजकीय इच्छा की अभिव्यक्ति कार्यपालिका द्वारा होती है। प्रत्येक देश का प्रशासन एक पिरामिड की भांति होता है जो आधार पर सबसे अधिक विस्तृत होता है और ऊपर की ओर

क्रमशः छोटा होता जाता है। मुख्य कार्यपालिका पिरामिड का शीर्ष है। राष्ट्रीय स्तर पर यह अमरीका में 'राष्ट्रपति', इंग्लैण्ड में 'रानी या राजा', फ्रान्स और भारत में 'राष्ट्रपति' होता है तथा कहीं पर यह 'एक समिति' के रूप में होता है – जैसे कि स्विट्जरलैण्ड में। विभिन्न देशों में इनके अधिकारों और स्वरूप में अन्तर होता है।

अल्फ्रेड जी. ग्रेसिया के शब्दों में, ''कार्यपालिका वह है जो किसी भी प्रकार के संगठन की सबसे महत्वपूर्ण नीतियों के निर्धारण एवं क्रियान्वयन में भाग लेती है। वह इनके लिए सामान्य मार्ग भी निश्चित करती है।''

डिमॉक के शब्दों में, ''मुख्य कार्यकारी कठिनाइयों का अन्त करने वाला पर्यवेक्षक तथा आगामी कार्यक्रम का प्रवर्तक होता है।''

4.3.2. मुख्य कार्यपालिका की भूमिका – राष्ट्रीय स्तर पर मुख्य कार्यपालिका के पास इतने कार्य और उत्तरदायित्व होते हैं कि कोई भी उनका निर्वाह, दूसरों की सहायता के बिना नहीं कर सकता। जॉन वीग के अनुसार, ''मुख्य कार्यपालिका को जितने अधिक तथा विविध कार्य करने होते हैं उनको कोई भी व्यक्ति चाहे कितना ही योग्य क्यों न हो, व्यक्तिगत रूप से पूर्ण नहीं कर सकता।'' अतः मुख्य कार्यपालिका को सहायता की आवश्यकता होती है। अधिकारी एवं कर्मचारी–वर्ग तथा अन्य सहायक संस्थाएँ मुख्य कार्यपालिका को उसके कार्यों के सम्पादन में सहायता प्रदान करते हैं। ये सब उसके आधार हैं जिसके अभाव में मुख्य कार्यपालिका का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा।

➢ **राजनीतिक कार्य –** प्रत्येक देश में मुख्य कार्यपालिका प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से जनता से सम्बन्धित होती है। जनता द्वारा निर्वाचित विधायिका की इच्छाओं को वह पूर्ण करती है। विधायिका से उसे शक्ति और आदेश दोनों प्राप्त होते हैं। इस दृष्टि से वह निम्नलिखित राजनीतिक कार्य सम्पन्न करता है।

- **विधायिका में सदन के नेता के रूप में –** संसदीसय प्रणाली में विधायिका में मुख्य कार्यपालिका (प्रधानमन्त्री) सदन में अपने दल का नेतृत्व करता है, परन्तु वह नेतृत्व सम्पूर्ण सदन का बन जाता है। अध्यक्षीय प्रणाली में राष्ट्रपति सदन का नेता तो नहीं होता, किन्तु अपनी इच्छाओं के अनुरूप तथा राष्ट्र की आवश्यकताओं के अनुसार कानून बनाने का प्रयास करता है।

- **जनता तथा विधायिका को सन्तुष्ट करना –** मुख्य कार्यपालिका को अपने हितों की रक्षा के लिए विशेष रूप से सतर्क रहना पड़ता है। यह सतर्कता जनता और विधायिका को सन्तुष्ट करने के लिए होती है। यदि मुख्य कार्यपालिका से जनता असन्तुष्ट हो जाती है तो उसका भविष्य भावी चुनावों में अन्धकारपूर्ण हो जाता है। इसके साथ–साथ विधायिका भी उसे अविश्वास प्रस्ताव के द्वारा पदमुक्त कर सकती है। अतः मुख्य कार्यपालिका नये–नये कार्यक्रमों, आश्वासनों और कार्यों के माध्यम से जनता और विधायिका को यह विश्वास दिलाती है कि वह उसके हितों की सर्वाधिक सुरक्षा करेगी।

- **कार्यपालिका सदस्यों के मध्य कार्य का विभाजन –** संसदीय एवं अध्यक्षीय प्रकार की मुख्य कार्यपालिका को अपने साथ कार्य करने के लिए साथियों की आवश्यकता होती है। साथियों का चयन करने सबसे महत्वपूर्ण कार्य मुख्य कार्यपालिका का होता है। इस महत्वपूर्ण कार्य को सम्पन्न करने के बाद मुख्य कार्यपालिका उनमें कार्यों तथा विभागों का बँटवारा करती है। अयोग्य व्यक्ति को उत्तरदायी पद पर रख दिये जाने से कार्य बिगड़ सकता है। इसी प्रकार यदि योग्य व्यक्तियों को उचित कार्य नहीं दिया गया तो वह कार्य रूचि से सम्पन्न नहीं करेगा। दोनों ही स्थितियों में प्रभाव मुख्य कार्यपालिका के भविष्य पर पड़ेगा।

- **राजनीतिक व्यवस्थापन –** इसका एक महत्वपूर्ण कार्य राजनीतिक जीवन को व्यवस्थित करना होता है। यह व्यवस्था तब तक सम्भव नहीं है जब तक कि राजनीतिक जीवन में स्थिरता नहीं आती। राजनीतिक स्थिरता के लिए आवश्यक है कि दल–बदल जैसी बीमारी का प्रभाव क्षेत्र पर न पड़े तथा जिस प्रकार के आश्वासन दिये जायें उन्हें पूरा करने की दिशा में प्रयास किये जायें।

मुख्य कार्यपालिका को उपर्युक्त राजनीतिक कार्यों के लिए अपना सब कुछ दाँव पर लगाना पड़ता है। यदि मुख्य कार्यपालिका किसी प्रकार अपने इस दायित्व के निर्वाह में असफल होती है तो उसका समस्त राजनीतिक जीवन, उपलब्धियाँ प्रभावहीन हो जायेंगी। जब तक कार्यपालिका के राजनीतिक कार्य व्यवस्थित नहीं होते तब तक उसकी प्रशासकीय सफलता भी नहीं आंकी जा सकती। राजनीतिक असफलता का प्रतिकूल प्रभाव प्रशासकीय जीवन पर पड़ना स्वाभाविक है।

प्रशासकीय कार्य – प्रशासनाध्यक्ष के रूप में मुख्य कार्यपालिका समस्त प्रशासकीय गतिविधियों और प्रबन्ध के लिए उत्तरदायी होता है। इस रूप में उसे अनेक कार्य करने पड़ते हैं जिसको गुलिक महोदय ने एक ही शब्द 'POSDCORB' में व्यक्त कर दिया है, जिसका अर्थ अग्रलिखित कार्यों से हैं।

- **योजना बनाना** – उन कार्यों की मोटी रूपरेखा तैयार करना जिन्हें करना आवश्यक है और साथ ही उन साधनों को निश्चित करना जिनके द्वारा कार्यों को करना है।
- **संगठन बनाना** – अधिकारियों के एक ऐसे ढांचे को तैयार करना जिसके द्वारा निर्धारित उद्देश्य के लिए काम के उप–विभागों की व्यवस्था की जाती है, उनको क्रमबद्ध किया जाता है, उनकी व्याख्या की जाती है और उनमें समन्वय स्थापित किया जाता है।
- **कर्मचारी रखना** – इसमें सम्पूर्ण कर्मचारी–वर्ग की भर्ती, प्रशिक्षण और उनके लिए कार्य करने की अनुकूल स्थितियों की व्यवस्था करना सम्मिलित है।
- **निर्देशन करना** – प्रशासन सम्बन्धी निर्णय लेना और उन्हीं के अनुसार कर्मचारियों को आदेश एवं सूचनाएँ देना और इस प्रकार कार्य को नेतृत्व प्रदान करना।
- **समन्वय करना** – कार्य में लगे विभिन्न विभागों में परस्पर समन्वय स्थापित करना।
- **प्रतिवेदन देना** – जिन लोगों के प्रति कार्यपालिका उत्तरदायी है, उनको जो कुछ हो रहा है, उससे अवगत कराते रहना। इस प्रकार इसमें अभिलेख, निरीक्षण तथा अनुसन्धान द्वारा कार्यपालिका का अपने अधीनस्थों तथा अपने आपको अवगत रखना सम्मिलित है।
- **बजट बनाना** – इसमें बजट से सम्बन्धित सभी कार्य करना, जैसे वित्तीय योजनाएं बनाना, आय–व्यय का लेखा–जोखा बनाना और प्रशासकीय अभिकरणों तथा विभागों को वित्तीय साधनों द्वारा अपने नियन्त्रण में रखना आदि सम्मिलित हैं।

4.3.3. मुख्य कार्यपालिका की आवश्यकता

डिक्शनरी ऑफ सोशल साइंसेज के अनुसार 'कार्यपालिका' या 'एक्जीक्यूटिव' का प्रयोग विशालतम अर्थ में सारे सरकारी शासन को चलाने वाले सभी अधिकारियों के लिए

किया जाता है, इसे यह नाम देने का कारण है कि यह विधायिका द्वारा पास किए गए कानूनों को कार्यरूप में परिणत करती है।

लोक प्रशासन में मुख्य कार्यपालिका को ही सम्पूर्ण प्रशासनिक प्रबन्ध व्यवस्था में नेतृत्व करना होता है। इसकी आवश्यकता निम्नलिखित कारणों से स्पष्ट होती है :

- प्रशासनिक विभागों में एकता बनाए रखने के लिए मुख्य कार्यपालिका का होना आवश्यक है। विशेषीकरण के कारण प्रशासनिक विभागों में होने वाले पारस्परिक संघर्ष का निपटारा जितनी कुशलता के साथ मुख्य कार्यपालक कर सकता है, उतनी कुशलता के साथ अन्य कोई अधिकारी नहीं कर सकता।

- लोक प्रशासन को जनता के कल्याण के लिए अधिक–से–अधिक तथा उत्तम से उत्तम सेवाएं सम्पन्न करनी चाहिए। ऐसा तभी किया जा सकता है जब कार्यपालिका शाखा में एकता रहे और एक बड़े केन्द्र को उत्तरदायी बना दिया जाए।

- मुख्य कार्यपालिका द्वारा ही व्यवसीापिका, जिसमें जन–प्रतिनिधि होते हैं को प्रशासन के सम्बन्ध में समस्त सूचनाएं प्राप्त होती रहती हैं।

- मुख्य कार्यपालिका में यदि प्रशासनिक सत्ता का केन्द्रीकरण कर दिया जाए तो इसे अपव्यय एवं दुर्व्यय को रोकने का महत्वपूर्ण साधन माना जाता है।

- प्रशासन को मितव्ययिता एवं कार्यकुशलता के साथ चलाने के लिए शक्तियों को मुख्य कार्यपालिका में निहित करता आवश्यक है।

➢ **कार्यपालिका के विभिन्न रूप** – किसी भी देश की मुख्य कार्यपालिका का रूप वहां की संवैधानिक व्यवस्था के अनुरूप निर्धारित होता है। मोटे तौर पर मुख्य कार्यपालिकाओं के अधोलिखित रूप विश्व के प्रमुख देशों में प्रचलित हैं : **संसदीय – अध्यक्षात्मक; वास्तविक – नाममात्र की; एकल संसदीय तथा बहुसंसदीय।**

➢ **संसदात्मक कार्यपालिका** – यह शासन की वह व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत व्यवस्थापिका और कार्यपालिका परस्पर सम्बन्धित होती हैं और कार्यपालिका व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी होती है। गार्नर के अनुसार, ''संसदात्मक शासन वह शासन प्रणाली है जिसमें वास्तविक कार्यपालिका अर्थात् मन्त्रिमण्डल व्यवस्थापिका अथवा उसके लोकप्रिय सदन के प्रति तथा अन्तिम रूप में निर्वाचक मण्डल के प्रति, अपनी राजनीतिक नीतियों तथा

कार्यों के लिए कानूनी रूप से उत्तरदायी होता है और राज्य का प्रधान नाममात्र का तथा अनुत्तरदायी होता है।'

➢ **संसदात्मक कार्यपालिका की मुख्य विशेषताएं**

संसदात्मक कार्यपालिका की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित कही जा सकती है –

- **नाममात्र की तथा वास्तविक कार्यपालिका में भेद –** इस शासन–व्यवस्था में नाममात्र की व वास्तविक कार्यपालिका में भेद होता है। राज्य का प्रधान नाममात्र की कार्यपालिका होता है जबकि वास्तविक कार्यपालिका मन्त्रिपरिषद् होती है। नाममात्र की यह कार्यपालिका इंग्लैण्ड के सम्राट की तरह वंशक्रमानुगत या भारत के राष्ट्रपति की तरह निर्वाचित हो सकती है। प्रत्येक स्थिति में सैद्धान्तिक तौर पर यह पूर्ण शक्ति सम्पन्न होती है लेकिन व्यवहार में वह इन शक्तियों का प्रयोग अपने विवेक के अनुसार नहीं कर सकती। व्यवहार में उसकी इन शक्तियों का प्रयोग वास्तविक कार्यपालिका अर्थात् मन्त्रिपरिषद् द्वारा ही किया जाता है।

- **व्यवस्थापिका व कार्यपालिका में घनिष्ठ सम्बन्ध –** इसके अन्तर्गत व्यवस्थापिका और कार्यपालिका एक–दूसरे से पृथक् न होकर परस्पर घनिष्ट रूप में सम्बन्धित होते हैं। कार्यपालिका की नियुक्ति व्यवस्थापिका में से ही की जाती है और कार्यपालिका अपने कार्यों और नीतियों के लिए व्यवस्थापिका के ही प्रति उत्तरदायी होती है। व्यवस्थापिका अविश्वास का प्रस्ताव पास कर कार्यपालिका को उसके पद से हटा सकती है। दूसरी ओर, कार्यपालिका केवल प्रशासन सम्बन्धी कार्य ही नहीं करती वरन् कानून निर्माण से सम्बन्धित सभी कार्यों में भी भाग लेती है।

- **कार्यपालिका के कार्यकाल की अनिश्चितता –** इस शासन–व्यवस्था में मन्त्रिपरिषद् का कार्यकाल निश्चित नहीं होता है। कार्यपालिका उसी समय तक अपने पद पर बनी रह सकती है जब तक कि उसे व्यवस्थापिका का विश्वास प्राप्त रहता है।

- **सामूहिक उत्तरदायित्व –** संसदीय शासन में वास्तविक कार्यपालिका का निर्माण करने वाले मन्त्री सामूहिक रूप से व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी होते हैं। संसदीय शासन का नियम है 'सब एक के लिए तथा एक सबके लिए।' इसका अर्थ यह है कि मन्त्रिमण्डल में जब एक निर्णय हो जाता है तो प्रत्येक मन्त्री का कर्तव्य है कि उसका संसद

और जनता में समर्थन करे चाहे मन्त्रिमण्डल की बैठक में वह इस निर्णय से सहमत था या असहमत।

- **व्यक्तिगत उत्तरदायित्व** – प्रत्येक मन्त्री अपने अधीन विभाग का प्रबन्धक होता है। इस प्रकार उसे व्यक्तिगत रूप से उस विभाग को सुयोग्य ढंग से चलाने के लिए विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी रहना होता है।

- **प्रधानमन्त्री का नेतृत्व** – संसदीय शासन में प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल का नेता होता है। वह मन्त्रिमण्डल रूपी मेहराब की आधारशिला है।

➢ **अध्यक्षात्मक कार्यपालिका**

जिस शासन–व्यवस्था के अन्तर्गत कार्यपालिका विभाग व्यवस्थापक विभाग से सर्वथा पृथक् होता है और कार्यपालिका विभाग का प्रधान एक ऐसा व्यक्ति होता है जो व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी नहीं होता, उसे अध्यक्षात्मक शासन कहते हैं। गार्नर के अनुसार, ''अध्यक्षात्मक सरकार वह होती है जिसमें कार्यपालिका अर्थात् राज्य का अध्यक्ष तथा उसके मन्त्री अपनी अवधि के बारे में संविधान की दृष्टि से विधानमण्डल से स्वतन्त्र होते हैं और अपनी राजनीतिक नीतियों के बारे में उसके प्रति अनुत्तरदायी होते हैं।'' गैटल लिखते हैं कि ''अध्यक्षात्मक शासन वह प्रणाली है जिसमें कार्यपालिका प्रधान अपने कार्यकाल और बहुत कुछ सीमा तक अपनी नीतियों और कार्यों के बारे में विधानमण्डल से स्वतन्त्र होता है।'' अमरीका, ब्राजील और दक्षिणी अमरीका के कतिपय राज्यों में इसी प्रकार राज्यों में इसी प्रकार की शासन–व्यवस्था है।

➢ **अध्यक्षात्मक कार्यपालिका की मुख्य विशेषताएं**

अध्यक्षात्मक कार्यपालिका की निम्नलिखित विशेषताएं हैं :

- **कार्यपालिका और व्यवस्थापिका का पृथक्करण** – यह शासन–व्यवस्था मॉण्टेस्क्यू के शक्ति–पृथक्करण सिद्धान्त पर आधारित है और इसके अन्तर्गत कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका एक–दूसरे से स्वतन्त्र रहती है। व्यवस्थापिका के अविश्वास एवं निन्दा प्रस्तावों का कार्यपालिका पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता और न ही कार्यपालिका कानून निर्माण सम्बन्धी कार्यों में भाग लेती है।

- **नाममात्र की और वास्तविक कार्यपालिका अलग–अलग नहीं** – अध्यक्षात्मक शासन में संसदीय शासन के समान नाममात्र की एवं वास्तविक कार्यपालिका अलग–अलग

नहीं होते हैं। राष्ट्रपति, जो देश का वैधानिक प्रधान होता है, वास्तविक रूप में कार्यपालिका की सभी शक्तियों का उपयोग करता है।

- **कार्यपालिका के कार्यकाल की निश्चितता –** कार्यपालिका के प्रधान का निर्वाचन एक निश्चित समय के लिए किया जाता है और उसके कार्यकाल पर व्यवस्थापिका के विश्वास–अविश्वास का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। सिवाय महाभियोग (Impeachment) के उसे उसकी कार्यावधि के पूर्व उसके पद से नहीं हटाया जा सकता है। अध्यक्षात्मक शासन–व्यवस्था की मन्त्रिपरिषद् के सदस्य केवल राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी होते हैं, अन्य किसी के प्रति नहीं।

➢ एकल और बहुल कार्यपालिका

संसदात्मक तथा अध्यक्षात्मक कार्यपालिकाओं को हम संगठन की दृष्टि से बहुल और एकल कार्यपालिका के नाम से भी पुकार सकते हैं। एकल कार्यपालिका के ऐसे संगठन से है जिसके अन्तर्गत निर्णयात्मक और अन्तिम रूप में कार्यपालिका की समस्त शक्ति किसी एक व्यक्ति के हाथों में केन्द्रित होती है। शासन प्रबन्ध की सुविधा के लिए कार्यपालिका शक्ति का विभाजन अवश्य ही किया जाता है, किन्तु अन्तिम रूप में सम्पूर्ण शासन व्यवस्था के लिए कोई एक व्यक्ति ही उत्तरदायी होता है। वर्तमान समय में अमरीका का राष्ट्रपति एकल कार्यपालिका का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।

बहुल कार्यपालिका से तात्पर्य कार्यपालिका के ऐसे प्रकार से है जिसके अन्तर्गत अन्तिम रूप में कार्यपालिका शक्ति किसी एक व्यक्ति में निहित न होकर व्यक्तियों के एक समुदाय में निहित होती है। प्राचीन एथेन्स और स्पार्टा में इस प्रकार की बहुत कार्यपालिका थी और वर्तमान काल में स्विट्जरलैण्ड में इसी प्रकार की बहुल कार्यपालिका है। स्विट्जरलैण्ड में कार्यपालिका सत्ता सात सदस्यों की एक संघीय सरकार में निवास करती है और यह संघीय सरकार सामूहिक रूप से राज्य की कार्यपालिका प्रधान के रूप में कार्य करती है। इस सरकार का ही एक सदस्य वरिष्ठता के क्रम से एक वर्ष के लिए उसका अध्यक्ष चुन लिया जाता है, परन्तु अध्यक्ष का कार्य केवल सरकार की बैठकों का सभापतित्व करना मात्र है। उसकी शक्ति और स्थिति सरकार के अन्य सदस्यों के समान ही होती है। कतिपय विद्वानों का मत है कि इंग्लैण्ड व भारत आदि संसदीय शासनों की कार्यपालिका भी एकल कार्यपालिका का उदाहरण है। यद्यपि इन देशों में कार्यपालिका शक्ति मन्त्रिमण्डल के

हाथों में होती है जो स्पष्ट रूप से बहुत सारे व्यक्तियों की एक संस्था है। किन्तु यह मन्त्रिपरिषद् सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के आधार पर एक इकाई की भांति कार्य करती है और मन्त्रिपरिषद् का प्रधान मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष तथा प्रभावशाली नियन्त्रणकर्ता होता है। अतः प्रधानमन्त्री को कार्यपालिका का वास्तविक प्रधान कहा जा सकता है। इस प्रकार संसदीय शासन एकल कार्यपालिका के ही उदाहरण है।

➢ **नाममात्र की व वास्तविक कार्यपालिका**

नाममात्र की कार्यपालिका से तात्पर्य उस पदाधिकारी से होता है, जिसे संविधान के द्वारा समस्त प्रशासनिक शक्ति प्रदान की गयी हो लेकिन जिसके द्वारा व्यवहार में इस प्रशासनिक शक्ति का प्रयोग अपने विवेक के अनुसार न किया जा सके। यद्यपि प्रशासन का सम्पूर्ण कार्य उसी के नाम पर होता है, किन्तु व्यवहार में इन कार्यों को वास्तविक कार्यपालिका द्वारा किया जाता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि नाममात्र का कार्यपालिका प्रधान राज करता है, शासन नहीं। भारत का राष्ट्रपति और इंग्लैण्ड का सम्राट नाममात्र की कार्यपालिका के ही उदाहरण हैं। मन्त्रिमण्डलात्मक या संसदात्मक शासन प्रणाली के अन्तर्गत संविधान द्वारा नाममात्र की कार्यपालिका को जो प्रशासनिक शक्ति प्रदान की जाती है, व्यवहार में इस शक्ति का प्रयोग जिन पदाधिकारियों के द्वारा किया जाता है, उसे वास्तविक कार्यपालिका कहा जाता है। यथार्थ में सम्पूर्ण प्रशासनिक शक्ति इस वास्तविक कार्यपालिका के हाथ में केन्द्रित होता है। इंग्लैण्ड और भारत की मन्त्रिपरिषद् इस प्रकार की वास्तविक कार्यपालिका के ही उदाहरण है।

➢ **मुख्य कार्यपालिका के कार्य और शक्तियां –** मुख्य कार्यकारी चाहे किसी भी प्रकार का हो, उसे दो प्रकार के कार्य करने होते हैं – राजनीतिक और प्रशासनिक। मुख्य कार्यपालिका कतिपय राजनीतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए गठित की जाती है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उसे अनेक प्रशासनिक प्रकृति के कार्य करने पड़ते हैं। सरकारी संस्थाओं में राजनीतिक एवं प्रशासन के बीच अन्तर करना प्रायः कठिन है। जैसा कि जॉन बीग का कहना है – राजनीतिक अध्यक्ष एवं प्रशासनिक प्रबन्ध के बीच का सम्बन्ध बहुत पतला होता है तथा यह तथ्य होने की अपेक्षा केवल नाममात्र का होता है।

- **राजनीतिक कार्य –** आधुनिक युग जनतन्त्रात्मक शासन–व्यवस्था का युग है। फलतः मुख्य कार्यपालिका के राजनीतिक क्रियाकलाप अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

सर्वप्रथम, मुख्य कार्यपालिका को व्यवस्थापिका तथा अपने राजनीतिक दल का पूर्ण सहयोग तथा समर्थन प्राप्त करना होता है जिसकी सहायता अथवा स्वीकृति उसके अस्तित्व के लिए आवश्यक है। यदि उसने विधानमण्डल तथा जनता की आवश्यकताओं की उपेक्षा की तो उस पर अनेक संकट आ जाएंगे। साथ ही, अपने पद से सम्बन्धित कर्तव्यों के पालन तथा प्रशासन के सुचारू संचालन के लिए उसे आवश्यक विधियों तथा वित्त की आवश्यकता होती है। फलतः उसे विधानमण्डल तथा जनता का विश्वास प्राप्त करने के लिए सतत प्रयत्न करने चाहिए।

- **प्रशासनिक कार्य** – उसके प्रशासनिक कार्य हैं : **(क) प्रशासनिक नीति का निर्धारण करना** – सर्वप्रथम मुख्य कार्यकारी को प्रशासनिक नीति की आधारभूत रूपरेखाएं तय करनी होती हैं। सम्पूर्ण प्रशासन के लिए नीति ही मार्गदर्शक का कार्य करती है। यह कार्यपालिका का ही कार्य है कि समय–समय पर सामान्य और विशिष्ट नीति सम्बन्धी निदेशन लागू करे। मुख्य कार्यकारी ही नीतियों से सम्बन्धित अनेक ऐसे निर्णय करता है जो लोक प्रशासन के कार्य संचालन पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं। प्रबन्ध नीति के गम्भीर प्रश्नों पर मुख्य कार्यपालिका द्वारा ही निर्णय लिया जाता है। साधारण नीति निर्माण का कार्य विधायिका का समझा जाता है, परन्तु व्यवहार में नीति निर्माण के कार्य में प्रमुख कार्यकारी स्वभावतया सबसे अधिक भाग लेता है। व्यवहार में अधिकांश अवसरों पर वही मूल नीति का निर्माण करता है, क्योंकि विधायिका द्वारा निर्मित विधियों में समूची प्रशासनिक क्रिया का उल्लेख नहीं होता। प्रदत्त व्यवस्थापन तथा स्वविवेकी शक्तियों के अन्तर्गत भी प्रमुख कार्यकारी मूल नीतियों का निर्माण करता है। **(ख) नियोजन सम्बन्धी कार्य** – प्रशासनिक कार्यों में दूसरा महत्वपूर्ण कार्य नियोजन है। साधारण शब्दों में, किसी भी कार्य की पूर्व तैयारी को नियोजन कहते हैं। कार्य को करने से पूर्व हम उसके विषय में सोचते हैं, रूपरेखा तैयार करते हैं, यही नियोजन है। प्रशासनिक लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए निर्धारित नीतियों के भीतर उनका क्रियान्वयन करना मुख्य कार्यकारी का महत्वपूर्ण कार्य है। साधनों और धन का भी उसे उचित नियोजन करना होगा। उसे समय–समय पर सुधार, संशोधन तथा पुनर्गठन हेतु भी नियोजन करना होगा। संक्षेप में, प्रशासन का संगठित स्वरूप ही नियोजन है। **(ग) समन्वय** – प्रशासनिक घटकों के कार्यों में सामंजस्य स्थापित करना मुख्य कार्यपालिका का अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है। अनेक अधिकारी संगठन तथा कार्यालय

प्रशासन के कार्य में व्यस्त रहते हैं। उचित सामंजस्य के अभाव में उनमें मतभेद, टकराव, गतिरोध एवं दोहराव उत्पन्न हो सकता है। यदि निम्न स्तरों पर संघर्षों और मतभेदों का निवारण न हो सके तो अन्ततः वे प्रमुख कार्यकारी के समक्ष प्रस्तुत किए जाते हैं और उसे उनके बारे में निर्णय लेने का पूर्ण अधिकार होता है। विभिन्न विभागों में समुचित समन्वय एवं तालमेल बनाए रखने के लिए वह अनेक अन्तर्विभागीय कड़ियों की स्थापना कर सकता है। **(घ) पदाधिकारियों की नियुक्ति एवं पदच्युति –** मुख्य कार्यपालिका को शासन के उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति करने का अधिकार रहता है। जैसे भारत में राष्ट्रपति राज्यपालों, उच्चतम न्यायालय तथा राज्यों के उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों, राजदूतों, संघ लोक सेवा आयोग के सदस्यों, आदि की नियुक्तियां करता है। जिन पदाधिकारियों की नियुक्ति मुख्य कार्यपालिका द्वारा की जाती है, उन्हें वह पदच्युत भी कर सकती है। परन्तु इस सम्बन्ध में उसे विशेष संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार कार्य करना होता है। राज्य के उच्च पदाधिकारियों को छोड़ अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति लोक सेवा आयोग द्वारा की जाती है। नियुक्ति के अपने इस अधिकार द्वारा कार्यपालिका प्रशासनिक संगठन पर प्रभुत्व बनाए रखती है। **(ड) संगठन की विस्तृत रूपरेखा निश्चित करना –** प्रशासन में सफलता प्राप्त करने के लिए सुव्यवस्थित संगठन का होना आवश्यक है। संगठन की रूपरेखा तो व्यवस्थापिका निर्धारित करती है, किन्तु उसका विस्तृत आन्तरिक स्वरूप कार्यपालिका द्वारा निश्चित किया जाता है। प्रशासनिक लक्ष्यों को पूरा करने के लिए विभाग ब्यूरो, आयोग, निगम, कार्यालय आदि स्थापित किए जाते हैं। कभी–कभी शासन की क्षमता में वृद्धि करने हेतु विद्यमान अभिकरणों के आन्तरिक संगठन में हेर–फेर अथवा उनका पुनर्गठन करना पड़ता है। यह समस्त कार्य मुख्य कार्यपालिका द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है। **(च) निदेश एवं आदेश जारी करने का अधिकार –** प्रशासनिक प्रमुख के रूप में मुख्य कार्यकारी का एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य है सम्पूर्ण प्रशासन के कार्यों का निरीक्षण करना तथा उन पर नियन्त्रण रखना। यह कार्य इसलिए विशेष महत्व रखता है क्योंकि मुख्य कार्यकारी शासन के विभिन्न कार्य स्वयं नहीं करता है, उन्हें अधीनस्थ पदाधिकारियों से करवाता है, वह अपनी बहुत–सी शक्तियां निम्न कर्मचारियों को हस्तान्तरित कर देता है। फलस्वरूप यह देखना उसका दायित्व है कि अधीनस्थ पदाधिकारी प्रदत्त शक्तियों का दुरुपयोग न करें। इस हेतु उसे निरीक्षण एवं नियन्त्रण की व्यापक शक्तियां प्राप्त हैं। वह किसी भी विभाग की जांच पड़ताल का आदेश दे सकता है, किसी भी विभाग से फाइलें, अभिलेख अथवा कोई

भी आवश्यक प्रपत्र परीक्षण के लिए मंगवा सकता है। वह आवश्यक निदेश, अधिशासी आज्ञा, घोषणा या परिचय जारी कर सकता है। इस प्रकार निदेश एवं आदेश जारी करके वह प्रशासन का नेतृत्व करता है। **(छ) बजट बनाना और वित्तीय प्रबन्ध पर नियन्त्रण रखना –** प्रशासन के लिए धन की अत्यन्त आवश्यकता होती है, जिसकी व्यवस्था करना मुख्य कार्यकारी का दायित्व है। कार्यपालिका ही बजट बनाती है, उसे व्यवस्थापिका के सामने प्रस्तुत करती है और व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत होने के पश्चात् उसको क्रियान्वित करती है। मुख्य कार्यकारी आर्थिक योजनाएं बनाता है तथा आथिक नीतियों की पहल निर्धारित करता है। इस प्रकार वित्तीय क्षेत्र में भी नेतृत्व मुख्य कार्यपालिका का ही रहता है। **(ज) जन–सम्पर्क स्थापित करना –** अन्ततः मुख्य कार्यकारी के संगठन के सार्वजनिक सम्बन्धों का भी प्रबन्ध करना होता है। आधुनिक युग में 'लोक सम्बन्धों' की महत्ता बढ़ गयी है। लोक प्रशासन का अन्ततोगत्वा जनता से ही सम्बन्ध है। अपने समस्त कार्यों के लिए सरकार जनता के प्रति उत्तरदायी रहती है। कार्यपालिका के लिए यह आवश्यक है कि वह लोगों को सरकारी योजनाओं तथा नीतियों के बारे में जानकारी एवं सूचनाएं देती रहे, ताकि वे उनमें रुचि लें तथा प्रशासन व जनता के बीच सन्देह व अविश्वास का वातावरण न पनपे। मुख्य कार्यपालिका संगठन और जनता के बीच की कड़ी है। जन–सम्पर्क स्थापित करने के लिए कार्यपालिका समाचार–पत्र, आकाशवाणी, पत्रकार सम्मेलन, आदि साधन प्रयुक्त करती है। वर्तमान में इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिए शासन जन–सम्पर्क विभाग स्थापित करता जा रहा है। इसके अतिरिक्त, वर्तमान में प्रमुख कार्यकारी की विविध हित समूहों एवं जनता के विभिन्न समुदायों के साथ भी मधुर सम्पर्क रखना आवश्यक हो गया है।

4.4. अध्याय के आगे का प्रमुख भाग (Further Main Body of Text)

4.4.1. सूत्र तथा स्टाफ : विलोबी ने सरकार की दो प्रकार की क्रियाएं बतायी है : (अ) प्राथमिक या कार्यात्मक, तथा (ब) संस्थागत या गृह प्रबन्ध सम्बन्धी। उन्हीं के शब्दों में, ''सामान्य प्रशासन की समस्या की विशिष्ट प्रकृति को समझने के लिए यह आवश्यक है कि सरकारी सेवाओं के, प्राथमिक या कार्यात्मक तथा संस्थागत या गृह प्रबन्ध सम्बन्धी कार्यकलापों के आधारभूत अन्तर को समझ लिया जाए।''

प्राथमिक क्रियाएं वे क्रियाएं हैं जिन्हें कोई सेवा अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए करती है। संस्थागत क्रियाएं वे हैं जिनका सम्बन्ध विभाग के मुख्य उद्देश्य से न होकर ऐसी बातों से हैं, जिनको पूरा किए बिना विभाग का काम ही नहीं चल सकता। इस अन्तर को और भी स्पष्ट करते हुए विलोबी कहते हैं, ''इस प्रकार मुख्य क्रियाएं तो स्वयं उद्देश्य हैं, जबकि संस्थागत क्रियाएं उद्देश्य की प्राप्ति के साधन मात्रा हैं।''

4.4.2. सूत्र अभिकरण – संगठन का प्राथमिक कार्य सूत्र अभिकरण द्वारा सम्पन्न किया जाता है। प्रत्येक बड़ा प्रशासनिक संगठन इकाइयों या खण्डों में बंटा हुआ होता है। सूत्र इकाइयों का सम्बन्ध नीति के निर्माण से होता है। इनके हाथों में शक्ति होती है जिसके आधार पर ये निर्णय ले सकती हैं तथा आज्ञाएं प्रसारित कर सकती हैं। ये क्रियाशील अभिकरण हैं। व्हाइट के अनुसार, ''सूत्र अभिकरण उन प्राथमिक उद्देश्यों से सम्बन्धित रहती हैं जिनके लिए शासन स्थापित किया जाता है।'' लेपावस्की के मतानुसार, ''सूत्र संगठन में सत्ता तथा उत्तरदायित्व की रेखाएं ऊपर से नीचे तक फैली होती हैं।'' इसलिए इन्हें 'लाइन' या 'सूत्र' की संज्ञा दी गयी है।

सूत्र अभिकरणों के प्रमुख उदाहरण (1) विभाग (Departments), (2) लोक निगम (Public Corporations), तथा (3) स्वतन्त्र नियामक आयोग (Independent Regulatory Commissions) हैं। उदाहरणस्वरूप, भारत की केन्द्रीय सरकार में कुछ विभाग इस प्रकार हैं : आन्तरिक सुरक्षा विभाग, गृह विभाग, शिक्षा विभाग, रक्षा विभाग, डाक विभाग, दूर संचार विभाग, परिवार कल्याण विभाग, आदि। ये विभाग सूत्र विभाग कहलाते हैं क्योंकि ये अभिकरण विभाग के मुख्य कार्य का निष्पादन करते हैं। लोक निगम तथा अमरीकी स्वतन्त्र नियामक आयोग भी एक प्रकार के सूत्र अभिकरण हैं।

4.4.3. स्टाफ अभिकरण – स्टाफ कार्य की प्रकृति का सही–सही वर्णन उसके शाब्दिक अर्थ में मिलता है। अंग्रेजी में स्टाफ का अर्थ छड़ी अथवा हाथ का ऐसा डण्डा है, जिस पर चलते समय शरीर का बोझ डाला जा सके, परन्तु जो स्वयं यह निर्णय न कर सके कि कब चलना है और किस दिशा में चलना है। दूसरे शब्दों में, जिस प्रकार एक वृद्ध व्यक्ति छड़ी का सहारा लेकर चलता है, उसी प्रकार संगठन में सूत्र अभिकरण स्टाफ अभिकरणों का सहारा लेकर संगठन को चलाते हैं। स्टाफ अभिकरणों का कार्य गृह प्रबन्धी

(House-Keeping) अथवा प्रबन्ध सम्बन्धी (Managerial) सेवाएं सम्पन्न करना है, जिससे कि मुख्य उद्देश्य की पूर्ति हो सके। स्टाफ अभिकरण प्रशासनिक पदसोपान से पृथक् रहते हैं।

4.4.4. स्टाफ अभिकरण के कार्य – स्टाफ इकाइयों का सम्बन्ध प्रशासन के संस्थागत या गृह प्रबन्ध कार्यों से होता है। स्टाफ अभिकरण 'लाइन' को योजना बनाने में सहायता देता है, परामर्श देता है और तथ्यान्वेषण के द्वारा हर प्रकार से मदद पहुंचाता है।

मूने ने स्टाफ अभिकरण के कार्यों के तीन पहलू माने हैं – (1) सूचना सम्बन्धी (Informative), (2) परामर्श सम्बन्धी (Advisory), तथा (3) पर्यवेक्षण सम्बन्धी (Supervisory)।

सूचना सम्बन्धी कार्य से आशय है कि स्टाफ अभिकरण सूत्र अधिकारी को आवश्यक सूचनाएं प्रदान करता है, जिससे उसे संगठन के प्राथमिक काम को करने में सहायता मिलती है। स्टाफ अभिकरण सम्बन्धित तथ्यों को इकट्ठा करता है और उन्हें सूत्र अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत करता है।

परामर्श सम्बन्धी कार्य से आशय यह है कि स्टाफ अभिकरण सूत्र अभिकरण को प्रशासन के प्रत्येक कार्य के सम्बन्ध में अपनी राय देता है। इससे निर्णय लेने में सुविधा होती है। स्टाफ द्वारा दिए गए परामर्श को मानना या न मानना सूत्र अभिकरण पर निर्भर करता है, किन्तु स्टाफ अधिकारी का यह कर्तव्य है कि वह सूत्र अधिकारी को सलाह दे।

- **सामान्य स्टाफ** – मुख्य निष्पादक अथवा कार्यपालिका को प्रशासनिक कार्यों के सम्पादन में सामान्य रूप से सहायता पहुंचाने वाले कर्मचारी वर्ग को 'सामान्य स्टाफ' के नाम से पुकारा जाता है। यह परामर्श देता है, तथ्यों को इकट्ठा करता है तथा महत्वपूर्ण विषयों को विचार के लिए कार्यपालिका के सम्मुख प्रस्तुत करता है। प्रत्येक देश में इस वर्ग के मन्त्रणा अभिकरण का प्रावधान किया जाता है।

- **तकनीकी स्टाफ** – इस श्रेणी के स्टाफ में वे कर्मचारी आते हैं जिन्हें कुछ विशिष्ट तकनीकी ज्ञान प्राप्त है। मुख्य कार्यकारी को प्रशासन में प्राविधिक मामलों को भी निपटाना पड़ता है। ऐसे मामलों में उन्हें तकनीकी परामर्श देने के लिए कतिपय विशेषज्ञों को रखा जाता है। संक्षेप में, तकनीकी स्टाफ विशेष प्रकार का होता है और इसमें चिकित्सक, शिक्षाशास्त्री, वकील, मनोवैज्ञानिक, इत्यादि लोग आते हैं। आधुनिक वैज्ञानिक युग में मुख्य कार्यकारी के लिए तकनीकी कर्मचारियों से परामर्श लेने की आवश्यकता दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

- **सहायक स्टाफ** – विभिन्न विभागों में कई सामान्य समस्याएं होती हैं, जैसे, आय–व्यय सम्बन्धी कार्य, हिसाब–किताब की जांच करने का कार्य, कर्मचारियों की नियुक्ति, मुद्रण, आदि। पहले विभाग अपने ये कार्य अलग–अलग किया करते थे। किन्तु हाल में यह सोचा गया कि इन सामान्य समस्याओं के लिए 'सामान्य अभिकरण' स्थापित करना अधिक सुविधाजनक एवं लाभप्रद होगा। ऐसा करने से पहला लाभ तो यह है कि इन कार्यों के सम्बन्ध में समस्त विभागों में एकरूपता स्थापित की जा सकेगी। अतः आधुनिक समय में, विभागों के सामान्य कार्यों के सम्पादन के लिए सामान्य अभिकरण स्थापित कर दिए गए हैं। इससे धन, समय और शक्ति की काफी बचत होगी और विभिन्न विभागों में कार्य का दुहराव नहीं होने पाता।

4.4.5. सूत्र अभिकरण : 'विभाग' (Department) प्रशासन की मूलभूत इकाई है। सूत्र इकाइयों के अनेक प्रकार के संगठन होते हैं, जैसे – विभाग, निगम, स्वतन्त्र नियामकीय आयोग, आदि। इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण 'विभाग' होता है।

'विभाग' प्रशासन की मूल संगठनात्मक इकाई है जिस पर प्रशासनिक क्रियाओं के सम्पादन का दायित्व रहता है। 'विभाग' उन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए अपने कार्य सम्पन्न करते हैं, जिनके लिए कि सरकार कायम रहती है। वे संगठन की बड़ी इकाइयां होती हैं, जो कि प्रशासन के पृथक्–पृथक् क्षेत्रों में कार्य करती हैं। प्रशासनिक पदसोपान में 'विभाग' का स्थान बहुत ऊँचा है। वह मुख्य कार्यपालिका के ठीक नीचे आता है तथा उसके प्रति उत्तरदायी होता है।

4.4.6. नागरिक सम्बन्ध का अर्थ : शासन की कोई भी व्यवस्था नागरिकों के समर्थन के बिना लम्बे समय तक नहीं चल सकती। इसका प्रमाण राष्ट्रों के इतिहास में देखा जा सकता है। विभिन्न राष्ट्रों में सरकारों की दीर्घकालिकता नागरिक द्वारा उन्हें प्रदान किए गए समर्थन व सहयोग पर ही निर्भर करती थी। जहाँ भी यह समर्थन उपस्थित नहीं होता, राष्ट्र अपने आपको गहरी समस्या में पाते हैं, जोकि उनके भविष्य को अनिश्चित बना देती है। प्रशासन–नागरिक अंतर्संबंध महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि शासितों का समर्थन व बोध प्रतिनिध्यात्मक सरकार, (जैसी कि भारत में है); इनकी स्थायित्व की पहली शर्त होती है। राज्य व समाज अथवा सरकार व नागरिकों में अंतर्संबंधों के पारंपरिक सिद्धान्त, विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं में चाहे वह अहस्तक्षेपवादी व्यवस्था हो या लोकतंत्र या सैन्य अधिनायकतंत्र, अब

प्रशासन के नए व विरोधाभासी परिमाणों का सामना करने में अपर्याप्त है, जोकि क्रमिक रूप से उत्पन्न हो रहे हैं। जनता या नागरिकों की स्थिति अब केवल प्रशासनिक सहायता व सेवाओं के प्राप्तकर्ताओं से परिवर्तित होकर अब शासन के कार्यों में मुख्य संचालकों की हो गई है – स्थानीय 'लाभकर्ता' से परिवर्तित होकर सक्रिया 'सहभागियों की स्थिति' में। यह इकाई प्रशासन व नागरिकों के मध्य संपर्क विभिन्न तरीकों पर ध्यान केन्द्रित करेगी। यह उनके अंतर्संबंध के बदलते सिद्धान्तों तथा संस्थागत रणनीतियों व उपायों पर भी चर्चा करेगी, जो संपर्क के लिए एक सैद्धांति अवधारणात्मक आधार का निर्माण करने का प्रयास करते है। यह इकाई, विशेष रूप से, भारतीय परिदृश्य पर भी प्रकाश डालेगी, ताकि नागरिक व प्रशासन में अंतर्सबंधों के विभिन्न परिमाणों को समझा जा सके।

➢ **नागरिकों व प्रशासन में अंतर्संबंध के तरीके –** आज, शासन का अर्थ है वस्तुओं व सेवाओं की कुशल व प्रभावशाली व्यवस्था। लोक प्रशासन इसलिए होता है, ताकि वह जनता को स्वास्थ्य, शिक्षा, आर्थिक सुरक्षा, कानून व व्यवस्था बनाए रखने, राष्ट्रीय सुरक्षा आदि सेवाएँ प्रदान करके उनकी स्थिति में सुधार कर सके। जनता लोक संस्थाओं से स्थानीय स्तर पर अधिक नजदीक या गहराई में संपर्क करती है। उदाहरण के लिए, स्थानीय सरकारें विभिन्न प्रकार से लोगों के जीवन को प्रभावित करती है। यह गतिविधियाँ जल–पूर्ति, बिजली, कूड़ा–कचरा हटाना व इसी प्रकार अन्य सेवाओं से संबंधित होती हैं।

ये विभिन्न तरीके हैं, जिनसे जनता वास्तविक जीवन की स्थितियों में लोक प्रशासन संस्थाओं से संपर्क स्थापित करती है। ये संपर्क निम्नलिखित रूपों में हो सकते हैं :

- **ग्राहक** – प्रशासनिक संस्थाओं के साथ संपर्क स्थापित करने का यह सबसे सामान्य रूप है। इस रूप में, नागरिक सरकारी संस्थाओं से लाभ या सेवाएँ प्राप्त करते हैं। उदाहरण के लिए, एक मरीज स्वास्थ्य निरीक्षण या चिकित्सा सेवाओं के लिए सरकारी अस्पताल जाता है।

- **नियंत्रक** – नियंत्रक के रूप में जनता अनेक सरकारी संस्थाओं से संपर्क करती है, जैसे पुलिस, इन्कम टेक्स विभाग, लाइसेंस विभाग आदि।

- **वादी** – सताए हुए नागरिक वादी बन जाते हैं, जब वे अपनी पीड़ा/कष्ट से अदालतों के द्वारा मुक्ति पाते हैं। वादी के रूप में, जनता यह आशा करती है कि उनकी शिकायतों से उन्हें न्याय मिलेगा।

- **सहभागी** – लोकतंत्र शासन में लोगों की सहभागिता सुनिश्चित करती है। इसे विभिन्न साधनों जैसे सामुदायिक नीतियों, निर्देशक समितियों, लाभकारी संस्थाओं आदि के द्वारा इसका संस्थाकरण किया जाता है। लगभग सभी कार्यक्रमों में, जनता नियोजन, क्रियान्वयन व परीक्षण के स्तरों पर भाग लेती है। जनता की सहभागिता प्रशासन व जनता दोनों का लोकतंत्रीकरण करती है, तथा साथ ही नए आगतों को लाती है, जोकि ठोस प्रोजेक्ट निर्माण, क्रियान्वयन व पूँजी की व्यवस्था की सुविधा करने में सहायता करती है।

- **आंदोलनकारी तथा जन–आंदोलनों व संघर्षों से जुड़े होना (Protesters and those Engaged in Struggles and People's Movements)** – अक्सर लोग सार्वजनिक नीतियों को लेकर सरकारी संस्थाओं के साथ संपर्क आंदोलनकर्ताओं के रूप में करते हैं, तथा सरकारी नीतियों व कार्यों में अन्याय का विरोध करते हैं। जन–संघर्ष, जैसे कि नर्मदा बाँध या उत्तर प्रदेश (अब उत्तरांचल) में जंगलों पर, सच्ची पीड़ा और माँगों को व्यक्त करते हैं, तथा जन–नीतियों में गलतियों पर केवल प्रश्न नहीं उठाते।

4.4.7. नागरिक सम्बन्धों का महत्व :

- जन सहभागिता से प्रशासन में पारदर्शिता आती है।
- जन सहभागिता से नितियों का क्रियान्वयन सही किया जा सकता है।
- जन सहभागिता से भ्रष्टाचार पर लगाम कसी जा सकती है।
- जन सहभागिता से जनती का समस्याओं का पता लगा कर उनके सन्दर्भ में नितियां बनाई जा सकती है।
- जन सहभागिता से प्रशासन में लोकतन्त्र का सहभागिता बढ़ाई जा सकती है।
- जन सहभागिता से P.P.P. को बढ़ावा दिया जा सकता है।
- जन सहभागिता से प्रशासन को उत्तरदायी बनाया जा सकता है।
- निर्णय–निर्माण प्रक्रिया में तीव्रता लाई जा सकती है।
- जन सहभगिता से आम जनता को प्रशासन के नजदीक लाकर प्रशासन को कल्याणकारी स्वास्थ्य दिया जा सकता है।

4.5. अपनी प्रगति जांचे (Check your progress)

नीचे कुछ प्रश्न दिए गए हैं उनके उत्तर देने का प्रयास करें :–

1. संसद के कितने भाग हैं?
2. संसद का ऊपरी सदन कौन–सा है?
3. लोक–सभा में कुल कितनी सिटें हैं?
4. राष्ट्रपति के चुनाव की प्रक्रिया कौन सी हैं?
5. भारत के कार्यपालिका शक्तियां किसके नाम से हैं?

4.6. सारांश (Summary)

इस अध्याय में हमने मुख्य कार्यपालिका के बारे में अध्ययन किया है और यह निष्कर्ष निकालने का प्रयास किया है कि मुख्य कार्यपालिका भारतीय प्रशासन की धूरी है। भारतीय राजनीति के द्वारा जो निर्णय या नीतियां बनाई जाती है उनका क्रियान्वयन मुख्य कार्यपालिका पर निर्भर करता है और इन नीतियों के बारे में उत्तरदायित्व भी मुख्य कार्यपालिका का ही होता है। प्रशासनिक कार्यों को करने के लिए मुख्य कार्यपालिका सचिवालय की सहायता लेती है क्योंकि सचिव अपने कार्यों में निपुण होते हैं। भारतीय प्रशासन का विकास मुख्य कार्यपालिका के द्वारा लागु की गई नीतियों पर ही निर्भर करता है।

मुख्य कार्यपालिका की सहायता के लिए सूत्र अभिकरणों को भारतीय प्रशासन में शामिल किया गया है। सूत्र अभिकरण मुख्य कार्यपालिका के कार्यों को लागू करने के लिए उत्तरदायि होते हैं। सूत्र अभिकरणों की सहायता के लिए स्टाफ अभिकरणों की स्थापना की जाती है क्योंकि स्टाफ अभिकरण अपने तकनीकी कार्यों में निपुण होते हैं जो सूत्र अभिकरणों को अपनी सलाह देते हैं ताकि सूत्र अभिकरणों के द्वारा निश्चित किये गए उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके।

4.7. सूचक शब्द (Key Words)

मुख्य कार्यपालिका, सूत्र अभिकरण, स्टाफ अभिकरण तथा सहायक अभिकरण।

मुख्य कार्यपालिका – भारतीय प्रशासनिक प्रणाली में मुख्य कार्यपालिका नीतियों को लागू करने के लिए उत्तरदायी होती है जो कि अस्थाई होती है।

सूत्र अभिकरण – भारतीय प्रशासनिक ̇प्रणाली में सूत्र अभिकरणों से हमारा अभिप्राय उन अभिकरणों से है जो निर्णयों को क्रियान्वित करते हैं।

स्टाफ अभिकरण – स्टाफ अभिकरणों से हमारा अभिप्राय उन अभिकरणों से है जो सूत्र अभिकरणों की प्रशासनिक तथा तकनीकी सहायता करते हैं।

सहायक अभिकरण – सहायक अभिकरणों से हमारा अभिप्राय उन अभिकरणों से है जो सूत्र अभिकरणों की गृह कार्यों में सहायता करते हैं।

4.8 स्वयं मूल्यांकन हेतु प्रश्न (Self Assessment Questions) :-

1. मुख्य कार्यपालिका के अर्थ, परिभाषा तथा भूमिका को समझाइए ?
2. सहायक अभिकरण से आप क्या समझते हो ?
3. सूत्र अभिकरण का मुख्य कार्यपालिका में क्या सहयोग है ?
4. स्टाफ अभिकरण तथा सूत्र अभिकरण में अन्तर को समझाइए ?

4.9. अपनी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर (Answer for check your progress):-

1. तीन अंग है।
2. राज्य–सभा।
3. 545 सिटे हैं।
4. एकल–संक्रमणीय मत प्रणाली।
5. राष्ट्रपति के नाम से।

4.10. सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference):-

1. Public Administration, Mcgraw Hill : Laxmi Kant. M
2. New Horizons of Public Administration; Mohit Bhattacharya; Jawahar Publisher & Distribution.

3. Indian Administration; S.R. Maheshwari, Orient Black Swan.
4. Public Administration Theory and Practice; Hoshiar Singh and Pardeep Sachdeva; Pearson.
5. प्रशासनिक चिंतक; प्रसाद एण्ड प्रसाद सत्यनारायण; जवाहर पब्लिकेशन एण्ड डिस्ट्रीब्यूशन।

Subject : लोक प्रशासन	
Course Code **:**	Author **:**
Lesson No. **: 5**	Vetter **:**
संचार	

अध्याय – 5 संचार

5.1 अधिगम उद्देश्य **(Learning Objectives)**

5.2. प्रस्तावना **(Introduction)**

5.3. अध्ययन के मुख्य बिन्दु **(Main Point of Text)**

- **5.3.1** संचार के अर्थ व परिभाषा
- **5.3.2.** संचार की प्रक्रिया

5.4. अध्याय के आगे का प्रमुख भाग **(Further Main Body of Text)**

- **5.4.1.** संचार का महत्व
- **5.4.2.** संचार के विविध रूप
- **5.4.3.** संचार के प्रकार
- **5.4.4.** संचार के कार्य
- **5.4.5.** संचार का लक्ष्य
- **5.4.6.** संचार के इलेक्ट्रॉनिक माध्यम

5.5. अपनी प्रगति जांचे **(Check your progress)**

5.6. सारांश **(Summary)**

5.7. सूचक शब्द **(Key Words)**

5.8. स्वयं मूल्यांकन हेतु प्रश्न **(Self Assignment Questions)**

5.9. अपनी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर **(Answer for Check your progress)**

5.10. सन्दर्भ ग्रन्थ **(Reference)**

5.1 अधिगम उद्देश्य (Learning Objectives)

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप निम्न विषयों को समझ पाओगे :–

- संचार का अर्थ व परिभाषा
- संचार के महत्व
- संचार के विविध रूपों का
- संचार की प्रक्रिया
- संचार के प्रकार
- संचार के कार्य
- समाज में संचार की भूमिका

5.2. प्रस्तावना (Introduction)

अंग्रेजी के कम्यूनिकेशन शब्द के पर्याय के रूप में संचार शब्द प्रचलित है, जिसका अर्थ है संचरण, (यानी एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाना), सम्प्रेषण, आदान–प्रदान, अभिव्यक्ति कौशल आदि। सामान्यतः सम्प्रेषण या संचार का अर्थ है किसी जानकारी, भाव या विचार को दूसरे तक पहुँचाना और दूसरे के भाव या विचार की जानकारी पाना। इसके लिए एक और शब्द का प्रयोग किया जा सकता है – परस्पर बातचीत या विमर्श।

इस इकाई में संचार के स्वरूप, प्रक्रिया व महत्व पर प्रकाश डाला गया है। संचार को सही रूप में समझने के लिए उसकी प्रक्रिया व उसके स्वरूप को समझना आवश्यक है। विद्यार्थियों को संचार विषय पर गहराई से समझाने का यह एक प्रयास है।

5.3. अध्ययन के मुख्य बिन्दु (Main Point of Text)

5.3.1. संचार के अर्थ व परिभाषा : सामान्य तौर पर हम संचार शब्द का प्रयोग करते ही उसका अर्थ समझते हैं – वक्ता या प्रेषक द्वारा संदेश भेजना और श्रोता या प्रेष्य द्वारा सूचनाएँ ग्रहण करना। यह उल्लेखनीय है कि संचार का सम्बन्ध समाज से है और समाज में संचार के समुचित संसाधनों के आने में पहले से ही संचार के विविध माध्यम अस्तित्व में आते रहे हैं। संचार का शाब्दि अर्थ है फैलाव – विस्तार, किसी बात को आगे बढ़ाना, चलाना, फैलाना। और जनसंचार का आशय है – जन–जन में भावों की, विचारों की अभिव्यक्ति करना और भावों और विचारों को समझना।

इस तरह कम्यूनिकेशन संचार का अर्थ है –

1. विचारों, भावनाओं, सूचनाओं का आदान–प्रदान करना
2. आपसी समझ बढ़ाना और
3. जानना अथवा बोध करना

इस रूप में संचार के अन्तर्गत सोचना, बोलना, सुनना, देखना, पढ़ना, लिखना, परस्पर व्यवहार, विचार विमर्श, सम्भाषण, वाद–विवाद सब आ जाता है। आपसी बातचीत, टेलिफोनिक सम्प्रेषण, पत्राचार, यह सब भी संचार के अन्तर्गत आ जाता है। यह संचार मनुष्य तो करता ही है, संसार के समस्त अन्य प्राणी किसी न किसी रूप में संचार करते हैं। यह संचार मनुष्य तो करता ही है, संसार के समस्त अन्य प्राणी किसी न किसी रूप में संचार करते हैं। एक उदाहरण से हम इस बात को समझ सकते हैं। आपने देखा होगा कि प्रायः हमारे पालतू पशु अपनी खुशी, अपनी पीड़ा, स्नेह, क्रोध – अपने हाव–भाव और चेष्टाओं द्वारा व्यक्ति करते हैं। हमारी एक गाय को आम बहुत पसन्द थे। एक बार वह बीमार पड़ी। हमने आम के साथ उसे कुछ दवाईयाँ दीं। पहले इस बात का बोध उसे नहीं हुआ पर एक दिन एक टैबलेट उसके दाँत के नीचे आ गई, उस दिन से उसने न केवल आम खाना छोड़ दिया, बल्कि घर के किसी भी सदस्य के हाथ से कुछ भी खाने से इन्कार कर दिया। जबकि आस–पड़ोस के लोगों से उसका व्यवहार यथावत ही रहा। जाहिर है कि मनुष्येतर प्राणी भी अपनी भावानुभूतियों को किसी न किसी तरीके से अभिव्यक्त करते हैं। हाँ, बौद्धिक क्षमता अधिक होने के कारण मनुष्य ने संचार के बेहतर से बेहतर तरीके खोज लिए हैं।

यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि आज संचार केवल भावों या विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम मात्र नहीं है, इसके द्वारा अपने समाज, अपने देश में घट रही घटनाओं की ही जानकारी हमें नहीं मिलती अपितु विश्वमंच पर क्या कुछ घट रहा है, इसकी भी जानकारी मिलती है। हमारे सामाजिक परिदृश्य में गत कुछ दशकों से बहुत बदलाव आए हैं। विश्व का एकध्रुवीय हो जाना, भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया की शुरुआत, और कम्प्यूटर क्रान्ति का प्रभाव–पुरजोर रूप में दिखाई देने लगा है तो हमें यह भी महसूस होने लगा है कि विश्व इतिहास में बीसवीं शताब्दी की कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं – यथा उपनिवेशवाद का खात्मा, रूसी क्रान्ति, दो–दो विश्वयुद्ध, फासीवाद का उदय, गांधीवाद का उदय, वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति, मार्क्सवादी विचारधारा का फैलाव, सोवियत संघ का विघटन आदि ने हमारे समाज–साहित्य–भाषा–चिन्तन सब पर बहुत प्रभाव डाला है और

हमारी सोच, हमारी कार्यशैली को आमूल परिवर्तित कर दिया है, हम एक संस्कृति, एक भाषा का नारा लगाने लगे हैं, ऐसे में संचार शैली, संचार व्यवस्था में जो अभूतपूर्व परिवर्तन हुए हैं, वह हमें हैरत में डाल देते हैं।

एक समय हमें सूचना इकट्ठा करने के लिए समय, शक्ति, श्रम काफी व्यय करना पड़ता था और आज सर्च इंजन के सहारे से पूरे विश्व की जानकारी हमारी उंगलियों में है। फैक्स, ई–मेल, टेलीकान्फ्रेन्सिंग द्वारा, दृश्य–श्रव्य माध्यमों द्वारा हम बड़ी आसानी से अपनी इच्छित जानकारी पा लेते हैं। आजकल टेलीफोनिक साक्षात्कार बेहद प्रचलन में हैं। इससे न केवल साक्षात्कार लेने या देने वाले के समय की बचत होती है, पैसे, कागज आदि की भी बचत होती है। कहने का आशय यह है कि हमारी संचार प्रणाली अत्यन्त विकसित और वैज्ञानिक है। इस प्रणाली के विकास में हम मौखिक संचार, लिखित संचार, मुद्रण कला के माध्यम से संचार, टेलीग्राफिक प्रणाली को पार करते हुए संचार के अत्याधुनिक संसाधनों से सम्पन्न पाँचवें चरण में हैं, इस चरण में पारस्परिक क्रियात्मक संचार प्रणाली (Interactive Communication System) पर विशेष बल दिया जाता है। ई–मेल, सोशल नेटवर्किंग, टेली कॉन्फ्रेन्सिंग, फेसबुक, ट्विटर, ब्लॉग आदि शब्द इस परिप्रेक्ष्य में आज बहुत प्रचलित हो गए हैं। इन संसाधनों के द्वारा आज संचार के क्षेत्र में क्रान्ति उपस्थित हो गई है और हम संचारप्राणी (Communicating Animal) बन गए हैं। अपने बिल हम इन्टरनेट द्वारा जमा कर सकते हैं, हवाई जहाज और रेलवे के टिकट बुक करा सकते हैं, ई–पेपर के रूप में समाचारपत्र पढ़ सकते हैं, पूरे विश्व के समाचार जान सकते हैं, खरीदारी कर सकते हैं, ई–मेल द्वारा पत्र भेज सकते हैं, आलेख भेज सकते हैं, ब्लॉग द्वारा अपनी अभिव्यक्ति की क्षमता को प्रस्तुत कर सकते हैं, फेसबुक, ट्विटर आदि द्वारा अपने विचारों को सबके साथ बाँट सकते हैं और कागज की बचत कर सकते हैं, राजस्व की भी बचत कर सकते हैं।

5.3.2. संचार की प्रक्रिया : संचार एक व्यक्ति से दूसरे तक अर्थपूर्ण संदेश प्रेषित करने वाली प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया जटिल और वैज्ञानिक है। यदि संचार सम्यक रूप से नहीं होता तो संदेश ठीक–ठीक रूप से श्रोता–वक्ता तक नहीं पहुँच सकता। वस्तुतः संचार प्रक्रिया में बाधा होने पर अनेक प्रकार की गलतफहमियाँ, क्रोध, नैराश्य, ईर्ष्या, द्वेष आदि उत्पन्न हो जाते हैं। स्पष्ट है कि अभिव्यक्तिक नैपुण्य किसी भी क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने की कुंजी है। Good communication skills are absolutely vital in any successful workplace. लिहाजा संचार संसाधनों का सशक्त होना बहुत जरूरी है। यदि संचार सुचारू

रूप में होगा तो श्रोता उसे ठीक से ग्रहण करेगा, उसका सम्यक उत्तर देगा। एक उदाहरण से हम अपनी बात स्पष्ट कर सकते हैं। यदि किसी भी दिन बिजली नहीं आती है, तो हमारी बहुत सी गतिविधयां ठप पड़ जाती है। हम मोबाइल, इन्टरनेट का प्रयोग नहीं कर सकते, रेडियो, टी.वी. के कार्यक्रम नहीं देख सकते यहाँ तक कि पानी की सप्लाई बन्द हो जाती है और कुछ समय बाद हमें एक खालीपन लगने लगता है।

सम्प्रेषक और सम्प्रेष्य का आपसी तालमेल ठीक होगा, समय की बचत होगी और सूचनाएँ अधिकाधिक एकत्र होंगी। संचार सुचारू रूप से हो, इसके लिए वक्ता को अपने विचारों को स्पष्टतः तथा विस्तारपूर्वक अभिव्यक्त करना चाहिए ताकि वह श्रोता के समक्ष एक स्पष्ट चित्र खींच सके। कहने का आशय यह है कि संचार प्रक्रिया का अर्थ है एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक अर्थपूर्ण संदेश का सम्प्रेषण। हमारे अनुभवों, विचारों, संदेश, दृष्टिकोण, मत, सूचना, ज्ञान आदि का परस्पर मौखिक, लिखित या सांकेतिक आदान–प्रदान संचार के अन्तर्गत आ जाता है। 'कोलंबिया इन्साइक्लोपीडिया ऑव कम्युनिकेशन' में संचार के विषय में कहा गया है – 'The transfer of thoughts and message as contrasted with transportation of goods and persons' स्पष्टतः सम्प्रेषण की प्रक्रिया जटिल और वैज्ञानिक है।

पश्चिमी विचारक अरस्तू का कहना था कि किसी भी नाट्यप्रस्तुति में संगठनत्रय (Three Unities-unity of time, action and place) का होना अत्यावश्यक है अन्यथा सम्प्रेषण में बाधा होगी। यह संगठनत्रय संचार के श्रेष्ठ रूप को ही व्यक्त करता है। यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है संदेश भेजने का लक्ष्य है संदेश ग्रहण करने वाले तक वक्ता का अभिप्राय अच्छी तरह पहुँच जाय। और यह तभी सम्भव है जब वक्ता–श्रोता में परस्पर तालमेल हो, वक्ता की कण्ठध्वनि, उसका अभिप्रेत, देश, काल, प्रस्ताव – सभी में परस्पर सन्निधि हो। वक्ता क्या कह रहा है? क्या कहना चाहता है? उसकी कण्ठध्वनि कैसी है? किस स्थान पर वह अपनी बात कह रहा है? देश कौन सा है? समय क्या है? श्रोता की मनःस्थिति क्या है? उसका बौद्धिक स्तर क्या है? यह सब बातें सम्प्रेषणीयता को सफल या असफल बनाती है।

संचार की प्रक्रिया वैज्ञानिक भी है और जटिल भी। संचार की 'एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक अर्थपूर्ण संदेश प्रेषित करना' यह परिभाषा संचार के विषय में स्पष्ट और ठीक ठीक जानकारी नहीं दे सकती। यहाँ हम अमेरिकी विद्वान पर्सिंग (Bobbye Sorrels

Persing) की परिभाषा उद्धृत करना चाहते हैं। पर्सिंग का कहना है – Human communication may be defined as the spiraling process of the transaction of meanings thropugh symbolic action involving all elements associated with sending and receiving written, oral, and non-verbal messages'.

अर्थात् मानव संचार को प्रतीकात्मक क्रिया द्वारा अर्थों के कार्यव्यापार की सर्पिल या कुण्डलीदार प्रक्रिया द्वारा पारिभाषित कर सकते हैं। इसमें लिखित, मौखिक या शब्देतर संदेश भेजने और प्राप्त करने से जुड़े सभी तत्त्व शामिल हैं। पर्सिंग की उस परिभाषा में आए निम्नांकित छः घटक मानव संचार के स्वरूप को वैज्ञानिक तरीके से स्पष्ट करते हैं –

1. सर्पिल प्रक्रिया
2. कार्यव्यापार
3. अर्थ
4. प्रतीकात्मक क्रिया या व्यवहार
5. संदेश प्रेषण तथा ग्रहण करने से जुड़े सभी तत्व
6. लिखित, मौखिक एवं शब्देतर संदेश

पर्सिंग का मानना है कि संचार प्रक्रिया गत्यात्मक प्रकृति की है। इस प्रक्रिया में जो संदेश भेजा जाता है व संदेश पाने वाले के पास सीधे–सीधे नहीं पहुँचता अपितु घुमावदार तरीके से पहुँचता है। संदेश पहुंचने के बाद संदेश पाने वाले की प्रतिक्रिया होती है। जिसे फीडबैक कहा जाता है, संचार की प्रक्रिया तभी पूरी होती है जब फीडबैक मिलता है। आपने देखा होगा कि यदि श्रोता वक्ता की ओर मुखातिब नहीं होता तो वक्ता का बात करने का सारा उत्साह खत्म हो जाता है और यदि श्रोता बात सुनने को उत्सुक होता है तो वक्ता का उत्साह बढ़ता है और वह और भी अच्छे तरीके से अपनी बात कहने का प्रयत्न करता है। इस बात को हम निम्न रेखाचित्रों से समझ सकते हैं।

1. **सर्पिल प्रक्रिया** – संचार की वास्तविक प्रक्रिया सर्पिल है। इस बात को हम ऐसे भी समझ सकते हैं – यदि एक पत्थर तालाब में डाला जाय तो उसके चारों तरफ वृत्त बनते हैं। वृत्त पहले छोटा, फिर बड़ा फिर और बड़ा होता जाता है। इसी तरह संदेश वक्ता द्वारा अभिव्यक्त होता है और फिर पूरे परिवेश में फैलता जाता है। पर्सिंग के अनुसार प्रेषक और प्रेष्य एक ही स्तर पर संचार क्रिया आरम्भ नहीं करते। संदेश का विकास अलग–अलग होता है। हमने पहले भी इस ओर इंगित किया है कि संदेश यदि व्यवधान रहित होगा तो

अधिकाधिक सफल होगा। कोई भी व्यवधान या हस्तक्षेप होने पर संचार में रुकावट आ सकती है। संचार प्रक्रिया गत्यात्मक प्रकृति की है। इस प्रक्रिया में जो संदेश भेजा जाता है वह संदेश पाने वाले के पास सीधे सीधे नहीं पहुँचता अपितु घुमावदार तरीके से पहुँचता है। संदेश पहुंचने के बाद संदेश पाने वाले की प्रतिक्रिया होती है जिसे फीडबैक कहा जाता है। संचार की प्रक्रिया तभी पूरी होती है जब फीडबैक मिलता है।

पर्सिंग ने संचार प्रक्रिया के विषय में बताने के साथ–साथ संचार के विभिन्न स्तरों की भी चर्चा की है। उनके अनुसार मानव संचार के पाँच स्तर होते हैं –

(क) अन्तःवैयक्तिक (स्वगत) संचार

(ख) अन्तरवैयक्तिक संचार

(ग) मध्य संचार

(घ) व्यक्ति के समूह संचार

(ड) जनसंचार

2. कार्यव्यापार – कार्यव्यापार संचार का बेहद महत्वपूर्ण उपकरण है। हमने देखा कि कोई भी अभिव्यक्ति फीडबैक की अपेक्षा करती है। यदि फीडबैक न हो तो अभिव्यक्ति का कोई मूल्य नहीं होता। किसी सभागार में किसी वक्ता के भाषण के दौरान यदि स्रोता उसे सुनने के लिए तत्पर नहीं हैं, या समझ नहीं पा रहे हैं या अपनी आँखों, चेष्टाओं, हाव–भाव से यह नहीं दिखाते कि वह जो कुछ सुन रहे हैं, सीख रहे हें, वह उन्हें समझ में आ रहा है तो ऐसे श्रोताओं और सभागार में रखी कुर्सी–मेजों में कोई अन्तर नहीं रह जाता है। क्योंकि जैसे कुर्सी–मेजों पर वक्ता के भाषण का कोई असर नहीं होता वैसे ही ऐसे श्रोताओं पर भी कोई असर नहीं होता और यह संचार एकतरफा और इसलिए निरर्थक भी हो जाता है। तुलसीदास ने भले ही लिखा हो कि उन्होंने रामचरितमानस को स्वान्तः सुखाय लिखा परन्तु हम जानते हैं कि उनकी कृति उनके ही नहीं बहुत से जिज्ञासुओं के लिए आज भी सुखद है। कहने का आशय यह है कि संचार दोतरफा व्यापार है। वक्ता संदेश देता है, श्रोता सुनता है। देना और सुनना – दोनों ही समान रूप से महत्व रखते हैं। यह संदेश सार्थक होता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि संचार का कार्य अर्थोद्दीपन करना है। पर्सिंग संचार के तीसरे घटक के रूप में इसी दृष्टि से अर्थ की चर्चा करते हैं।

3. अर्थ – वक्ता जैसे ही किसी शब्द का उच्चारण करता है, हम तुरन्त उसका अर्थ ग्रहण कर लेते हैं। वस्तुतः संचार के कार्यव्यापार से आशय है अर्थ का स्थानान्तरण। तुलसीदास कहते हैं – गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न – यानी शब्द और अर्थ पानी और पानी में उठने वाली लहर की तरह एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि हमारा मस्तिष्क अपने आसपास की वस्तुओं की व्याख्या करता है। इस व्याख्या को अर्थ कह सकते हैं। संचार का कार्य व्यापार वह अर्थप्रणाली ही है, जो समय, स्थान, काल, परिस्थिति, परिवेश आदि के आधार पर निर्धारित होता है। हम रात शब्द का उच्चारण करते हैं। यह शब्द उच्चरित होने के साथ एक सामान्य अर्थ बताता है – दिन की समाप्ति। पर, सुनने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए रात शब्द का अर्थ अलग–अलग होता है। यदि किसी ने यह तय किया कि रात हो घुमने जाना है, तो रात का अर्थ है – घुमने जाने का समय हो गया। किसी को अविलम्ब कहीं पहुँचना था तो रात का अर्थ है – देर हो गई। किसी को अपना काम पूरा करना है, तो रात का अर्थ बहुत थकान हो गई भी हो सकता है और अब रात है, काम जल्दी से पूरा हो जाएगा भी हो सकता है। मतलब यह कि अर्थ हमारे मस्तिष्क में रहते हैं और हम प्रसंगानुसार विषयों की, वस्तुओं की अनोखी व्याख्याएँ करते रहते हैं। स्पष्ट है कि अर्थ की प्रकृति गत्यात्मक है। हम पाते हैं कि बहुत सारे शब्द जो पहले किसी और अर्थ में प्रयुक्त होते थे, आज दूसरे अर्थ में प्रयुक्त होने लगे हैं। उदाहरण स्वरूप हम रेडियो जौकी शब्द का उल्लेख कर सकते हैं। जौकी शब्द घुड़दौड़ के सवार के रूप में प्रयोग होता है और रेडियो जौकी में यह शब्द निरन्तर जोक (मजाक) करने वाला के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा है।

4. प्रतीकात्मक क्रिया – यह संचार का चौथा घटक है। भाषा की एक परिभाषा है – Language is a system of signs यानी भाषा प्रतीकों की व्यवस्था है। प्रत्येक शब्द के लिए एक प्रतीक निर्धारित है। वस्तुतः संचार की वास्तविक प्रक्रिया प्रतीकात्मक क्रिया है। ये प्रतीक वाचिक, लिखित और संकेतात्मक हो सकते हैं। हम यह भी जान चुके हैं कि मनुष्य एक मस्तिष्क से दूसरे मस्तिष्क तक आसानी से अर्थ का सीधा स्थानान्तरण नहीं कर सकता। इस स्थानान्तरण के लिए वह प्रतीकों का सहारा लेता है। प्रतीकों के द्वारा वह अपनी बात अच्छी तरह से सम्प्रेषित कर सकता है। साहित्य प्रतीकों का समृद्धतम प्रयोग करने के कारण सम्प्रेषण की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट होता है। हम प्रकृति के विभिन्न उपादानों से प्रभावित होते हैं, उनका वर्णन करते हैं जैसे – देखो, शाम कितनी अच्छी लग रही है।

सूर्य पश्चिम दिशा में है। आकाश उसकी लालिमा से लाल हो गया है। यही बात कवि कहता है इस रूप में –

दिवस का अवसान समीप था, गगन था कुछ लोहित हो चला।

तरुशिखा पर अवराजती, कमलिनी कुल बल्लभ की प्रभा। (प्रियप्रवास, हरिऔध)

तो यही वर्णन कितना सार्थक हो जाता है, कितना सम्प्रेषणीय बन जाता है। वक्ता की वक्तृता भी इस बात पर निर्भर करती है कि वह अपने संदेश को कितने अच्छे तरीके से कह सकता है। प्रतीक अभिव्यक्ति की कला के लिए आवश्यक उपादान है।

5. संचार में प्रेषण तथा ग्रहण – यह पहले ही स्पष्ट हो चुका है कि संदेश भेजना और ग्रहण करना – ये दोनों कार्य संचार के लिए आवश्यक है। संदेश भेजने के साथ संचार की प्रक्रिया पूरी नहीं हो जाती, संदेश पाने वाला संदेश ग्रहण करके उस पर अपनी प्रतिक्रिया करता है, तभी यह प्रक्रिया पूरी हो पाती है। विद्वानों ने संचार के जो निर्देश दिये हैं, उनमें वे कोडिंग, डीकोडिंग के माध्यम से इस स्थिति को समझाते हैं।

6. लिखित, मौखिक एवं शब्देत्तर संदेश – संचार का छठे घटक में सभी प्रकार के लिखित, मौखिक या संकेतात्मक संदेश आ जाते हैं। संदेश भेजने वाला पहले एक मानसिक प्रतीक निर्मित करता है, तदुपरान्त उन मानसिक प्रतीकों को बाह्य संदेश प्रतीकों के रूप में परिवर्तित करके प्राप्तकर्ता तक भेजता है। प्राप्तकर्ता का सजग मस्तिष्क इन बाह्य प्रतीकों को ग्रहण करता है और फिर उसका मानसिक प्रतीक निर्मित हो जाता है। इस तरह संदेश भेजने और ग्रहण करने की स्थिति से वक्ता का अभिप्रेत श्रोता तक पहुँच जाता है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि –

- संचार का अर्थ है अपने भाव, विचार, संदेश, ज्ञान, सूचना को दूसरों तक पहुँचाना।
- अपने अनुभवों का परस्पर आदान–प्रदान करना।
- संचार की प्रक्रिया सर्पिल है। इसमें संदेश पाने वाले की प्रतिक्रिया आवश्यक है।

- संचार प्रक्रिया केवल शब्दों के आदान प्रदान से सम्भव नहीं है। शब्दों के साथ वक्ता–श्रोता के हाव–भाव, अंग संचालन आदि भी संचार प्रक्रिया में सहायक होते हैं।

मानव संचार के पाँच स्तर है – अन्तः वैयक्तिक, अन्तरवैयक्तिक, मध्यसंचार, व्यक्ति से समूह संचार और जन संचार।

5.4. अध्याय के आगे का मुख्य भाग (Further Main Body of Text)

5.4.1. संचार का महत्व : जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि संचार के बिना जीवन जीने की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। किसी भी समाज में रहने वाले लोगों के रहन–सहन, खान–पान, आचार–व्यवहार अलग–अलग होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी विशेषताएँ और खामियाँ होती है। प्रायः हम यह सुनते हैं और महसूस भी करते हैं कि महत्व इस बात का नहीं होता कि आपने क्या कहा? महत्व इस बात का होता है कि आपने कैसे कहा? मनोवैज्ञानिक एक उदाहरण द्वारा व्यक्तियों के व्यक्तित्व की परख करते हैं। एक गिलास में आधा पानी है और आधा खाली है। एक व्यक्ति कहता है कि गिलास आधा भरा है और दूसरा कहता है कि गिलास आधा खाली है। पहले व्यक्ति को आशावादी तथा दूसरे को निराशावादी कहा जा सकता है। यानी संचार की श्रेष्ठता इस बात पर निर्भर करती है कि व्यक्ति अपने संदेश कैसे भेजता है। उसके संदेश की गुणवत्ता के आधार पर ही उसके व्यक्तित्व की पहचान होती है।

संस्कृत के सुप्रसिद्ध रचनाकार बाणभट्ट के विषय में हम सब जानते हैं। वे अपनी कृति कादम्बरी की रचना कर रहे थे। रचना पूरी नहीं हो पाई और उनका मृत्यु काल आ गया। उन्हें चिन्ता हुई कि उनकी इतनी महत्वपूर्ण रचना कैसे पूरी होगी। उनके दो पुत्र थे। उन्होंने तय किया कि दोनों पुत्रों की परीक्षा ली जाय। जो परीक्षा में उत्तीर्ण होगा, उसे ही कादम्बरी पूरी करने का दायित्व दे दिया जाए। उन्होंने अपने बड़े पुत्र को बुलाया और कहा कि सामने जो पेड़ खड़ा है, उसका वर्णन करो। पुत्र ने कहा – शुष्को वृक्षः तिष्ठति अग्रे – यानी सूखा पेड़ सामने खड़ा है। बाण ने छोटे पुत्र को बुलाकर उससे भी यही सवाल किया। जवाब आया – नीरस तरुरिह विलसति पुरतः – सामने एक रसरहित तरु विलास कर रहा है। कादम्बरी की शैली के अनुरूप यह उत्तर सुनकर बाणभट्ट ने अपनी कादम्बरी को पूरा करने का दायित्व छोटे पुत्र को सौंप दिया।

5.4.2. संचार के विविध रूप – हमारे देश में संचार के साधनों में उतनी ही विविधता और विभिन्नताएं दिखाई देती है जितनी हमारी लोकसंस्कृति और लोकभाषाओं में। लोकगीत, लोककथा, लोकनाट्य और लोकगाथाओं के अलावा भी ऐसे अनेक जनमाध्यम हैं जो लोक से भी जुड़े हुए हैं और जनसंचार में भी सहायक है। इनमें से ज्यादातर बेहद स्थानीय हैं और उनका प्रभाव बेहद सीमित क्षेत्र विशेष में ही होता है। लेकिन बहुत से ऐसे साधन भी हैं जो अपेक्षाकृत अधिक व्यापक क्षेत्र में प्रचलित हैं। स्वांग, विभिन्न लोककलाएं, धार्मिक प्रवचन ओर जादू आदि इसी तरह के कुछ साधन हैं।

स्वांग – स्वांग एक ऐसा लोक जनसंचार माध्यम है जिसमें नृत्य, संगीत, अभिनय और कवित्व का एक साथ संगम होता है। स्वांग ऐसा पारम्परिक लोकमाध्यम है जिसके आयोजन के लिए विशिष्ट मंच की जरूरत नहीं होती। जहां भी थोड़ी खुली जगह उपलब्ध हो, वहीं इसका आयोजन हो सकता है। स्वांग का असली मकसद दर्शकों का मनोरंजन है, उनमें प्रेम का संचार करना है। स्वांग के अनेुक रूप भारत में प्रचलित हैं। कहीं इसे नकल तो कहीं भांड और कहीं भड़ैती कहते हैं। स्वांग की विषयवस्तु भारतीय संस्कृति से जुड़ी कथाएं होती हैं। ऐतिहासिक, पौराणिक, सांस्कृतिक और धार्मिक आख्यान ही इनके प्रमुख विषय होते हैं। स्वांगों में संगीत पक्ष भी अधिक महत्वपूर्ण नहीं होता। इनका मुख्य आकर्षण पात्रों का अभिनय और उनका अन्दाज होता है। उत्तराखण्ड में भी होली के दौरान स्वांग खोले जाते हैं जिनमें प्रायः किसी खास व्यक्ति के अंदाज अथवा उसके किसी खास दुर्गुण पर व्यंग किया जाता है।

जादू – जादू पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र और कर्नाटक का एक लोकप्रिय जनसंचार माध्यम है। जादू वस्तुतः दर्शकों को अचम्भित कर देता है, चमत्कृत कर देता है। इसलिए जादू देखते समय दर्शक जादूगर के जबर्दस्त प्रभाव में आ जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में जादूगर का मजमा लोगों की खूब भीड़ जुटा लेता है और इस भीड़ में जादूगर जो कुछ कहता है दर्शक उस पर विश्वास करने लगते हैं। अक्सर जादूगर अपने प्रदर्शन के दौरान स्थानीय सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ भी संदेश देते हैं। प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से दिए गए संदेश दर्शक के मन में गहरा असर करते हैं। केन्द्र और राज्य सरकारें भी अपनी योजनाओं के प्रचार के लिए जादू के खेल का सहारा लेती हैं और व्यावसायिक प्रतिष्ठान भी।

लोककला माध्यम विचारों के प्रवाह का एक सुन्दर माध्यम हैं। ये विरोध, असहमति और सुधारों के भी संवाहक हैं। इनके जरिए सामाजिक मूल्यों पर टिप्पणी की जाती है, सुधारों की बात की जाती है और व्यंग के जरिए असंतोष या विरोध को अभिव्यक्ति दी जाती है – कपिला वात्सायन इस तरह ये माध्यम बदलाव के माध्यम के रूप में काम करते हैं। लोकोत्सव से जुड़े होने के कारण ऐसी परमपराएं शीघ्र ही समाज के हर वर्ग तक पहुंच जाती है। उदाहरणार्थ उत्तराखण्ड में देवी मन्दिरों में खास अवसरों पर होने वाली सामुहिक पशुबलि की प्रथा खत्म करने की आवाज ऐसे लोकउत्सवों के दौरान ही उठी और परिणामस्वरूप अब अनेक प्रमुख मंदिरों में यह पूर्णतः बन्द हो गई है और लोक प्रतीक रूप में नारियल चढ़ा कर काम चलाने लगे हैं। जनजातीय समाजों की अनेक कुप्रथाओं को समाप्त करने का आह्वान ऐसे ही लोक उत्सवों के दौरान हुआ और ये कुप्रथाएं समाप्त भी हो गईं। उत्तराखण्ड की नन्दा राजजात भी एक ऐसा बड़ा लोकोत्सव है जिसमें हजारों की संख्या में लोगों की भागीदारी होती है।

लोककला – लोककला के अन्तर्गत वे सारी कलाएं आती हैं जो लोक संस्कृति और लोकजीवन से जुड़ी हुई है। आलेख या चित्रकारी लोककला का ऐसा ही एक रूप है। आलेख अलग–अलग पर्वों, अवसरों और स्थानों के लिए अलग–अलग प्रकार से बनाए जाते हैं। गेरू, खड़िया, चावल के आटे आदि से बने इस तरह के चित्रों को हरियाणा व राजस्थान में लांडणा या मांडना कहते हैं तो उत्तराखण्ड में अल्पना या ऐंपण इसका सर्वाधिक प्रचलित रूप है। ऐंपण चावल के आटे और गूरू से बनाए जाते हैं और जीवन के हर उत्सव के लिए इनके अलग–अलग रूप होते हैं। चित्रकला के इन रूपों के अलावा धातुकर्म, काष्ठकला, वस्त्रकला आदि लोककलाओं के और भी अनेक रूप हैं जो किसी न किसी ढंग से जनसंचार के काम आते हैं और आधुनिकता की आंधी के बावजूद किसी न किसी तरह अपना अस्तित्व और उपयोगिता बनाए हुए हैं।

लोकनृत्य – लोकनृत्य भी एक ऐसा लोकमाध्य है जो जनता के अर्न्तमन तक किसी संदेश को पहुँचाने का रास्ता माना जाता है। पंडवानी, पंथी, माच, राई, भांगड़ा, गिद्दा, झूमर, रास, डांड्या आदि कुछ ऐसे प्रमुख लोकनृत्य हैं जो जनसंचार माध्यम के रूप में भी सक्रिय भूमिका निभाते हैं। उत्तराखण्ड के झोड़ा–चांचरी, हुड़किया बौल, चौफुला, झुमैल आदि ऐसे प्रमुख लोकनृत्य हैं जिनमें सामुहिक भागीदारी होती है और इस कारण से वे

प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष जनसंचार के साधन माने जाते हैं। इनकी उपयोगिता वर्तमान समय में भी कम नहीं हो रही।

संस्कार समारोह – इस तरह के आयोजन प्रायः व्यक्तिगत विषयों या सामाजिक परम्पराओं से जुड़े होते हैं। भारतीय जीवन दर्शन में मनुष्य के जीवन के 16 संस्कारों में नामकरण, यथोपवीत, विवाह आदि ऐसे संस्कार हैं जिनको व्यक्ति समाज के साथ सांझा उत्सव के तौर पर मनाता है। विवाह समारोह की अनेक रस्में ऐसी होती हैं जिनमें सामुहिक भागीदारी होती है। इनमें बहुत दूर–दूर के स्थानों पर रहने वाले लोग, रिश्तेदार एक दूसरे से मिलते हैं और इनके जरिए अलग–अलग संस्कृतियों का मिलन होता है। उत्तराखण्ड के विवाह समारोहों में सुआंल पथाई, रत्याली, शकुनांखर जैसे अवसर जनसंचार के बेहतरीन उदाहरण हैं। इसी तरह होलियों के आयोजन, घरेलू कथाओं के आयोजन आदि के जरिए भी जनसंचार होता है। ऐसे संस्कार प्रायः क्षेत्र विशेष के आधार पर अलग–अलग रूप भी बदलते हैं और लोक प्रतीकों की इनमें विशेष भूमिका होती है।

धार्मिक प्रवचन व आयोजन – धार्मिक प्रवचन तो सीधे–सीधे एक प्रकार का प्रत्यक्ष जनसंचार माध्यम हैं जिसमें एक वक्ता जो कुछ संदेश देता है वह उपस्थित जन समुदाय तक सीधा संप्रेषित होता है। कीर्तन महाराष्ट्र का ऐसा ही लोकमाध्यम है तो रामचरितमानस का पाठ उत्तरप्रदेश का। भागवत कथा, प्रवचन, सतसंग, कथा आदि इसके कुछ अन्य रूप हैं। उत्तराखण्ड में बैसी और आठों इनका एक रूप हैं। मूलतः इस तरह के आयोजनों में मुख्य वक्ता या कथावाचक या गुरु एक अच्छे अभिनेता और कथा वाचक की तरह कथा सुनाता है। बीच–बीच में वह अपने वाक्चातुर्य से श्रोताओं को जीवन के नैतिक नियम–कानूनों को भी समझाता जाता है। इस तरह के आयोजन अब शहरी क्षेत्रों में भी खासे लोकप्रिय होने लगे हैं और अनेक बार इनमें हजारों लोग एक साथ भी शामिल होते हैं। यह सामाजिक और नैतिक जीवन के उच्च मानदण्डों की स्थापना के साथ–साथ देश प्रेम और मानव प्रेम की शिक्षा देने में भी सहायक होते हैं।

यह स्पष्ट है कि जनसंचार के उपरोक्त सभी माध्यमों का अपने–अपने रूप में महत्व है और अपनी खास भूमिका भी है। प्रायः इन सभी माध्यमों के मकसद में एक बात समान है कि ये सब मनुष्य को उच्च नैतिक मूल्यों की राह दिखाते हैं। यही खूबी भारत के समाज की भी है इसलिए इन साधनों की उपयोगिता आज के युग में भी खत्म नहीं हुई है बल्कि और अधिक बढ़ गई है।

5.4.3. संचार के प्रकार – संचार एक जटिल प्रक्रिया है। ये प्रकट रूप में संदेशों के आदान–प्रदान के साथ–साथ एक रचनात्मक और मानसिक प्रक्रिया भी है और इसमें माध्यम का विशेष महत्व है। संचार के परिप्रेक्ष्य पर चर्चा करते हुए हमने समझा था कि किस तरह से समय और संदर्भ संचार की प्रक्रिया और उसके प्रभाव को प्रभावित करते हैं। संचार की इस जटिल प्रक्रिया को सरलता से समझने के लिये कई आधार पर विभाजित किया जाता है – मौखिक या गैर मौखिक संचार, तकनीकी या गैर तकनीकी संचार और सहभागी या गैर सहभागी संचार। इसी तरह से संचार की प्रक्रिया प्रकट और आमने–सामने है या उसमें किसी माध्यम का सहारा लिया गया है या संचार की प्रक्रिया में कितने लोग शामिल हैं – इस आधार पर संचार के अध्येताओं ने संचार के निम्न प्रकार गिनाए हैं –

1. **अन्तःवैयक्तिक संचार –** यह संचार उस स्थिति में होता है जब मनुष्य स्वयं यानी अपने आप से ही संचार करता है। सोच–विचार, चिंतन, कल्पना करना और स्वप्न देखना ये सब अन्तःवैयक्तिक संचार के रूप हैं। जब भी मनुष्य कुछ बोलता है या लिखता है तो पहले अपने स्तर पर उस संदेश के बारे में सोचता है और तब जाकर उसे अभिव्यक्त करता है। यह एक मानसिक प्रक्रिया होती है। इसमें संदेश भेजने वाला और संदेश को ग्रहण करने वाला वही व्यक्ति होता है। कहा जा सकता है कि अगर संचार समाजीकरण के केन्द्र में है तो अन्तःवैयक्तिक संचार सभी प्रकार के संचार की धुरी है। चाहे वो जनसंचार हो या समूह संचार उदाहरण के लिये रामलीला के संवाद हों या किसी फिल्म का निर्माण या फिर किसी कविता या कहानी का लेखन वे आसमान से नहीं टपकते बल्कि उनकी रचना से पहले, उन्हें अभिव्यक्त करने से पहले रचनाकार या संप्रेषक अन्तःवैयक्तिक संचार की जटिल प्रक्रिया से गुजरता है जिसमें कल्पना और चिंतन शामिल है। कह सकते हैं कि अन्तःवैयक्तिक संचार रचनाशीलता की बुनियादी जरूरत है। दैनन्दिन जीवन में भी अगर बच्चों को अपने अभिभावक से कुछ कहना होता है या माता–पिता को बच्चों से या फिर किसी व्यक्ति को पड़ोसी से कोई बातचीत करनी होती है तो वे पहले अपने मन में उसका पूर्वाभ्यास करते हैं। संचार की ये स्थिति एनकोडिंग के संदर्भ में समझी जा सकती है।

इसके अलावा ध्यान और साधना भी अन्तःवैयक्तिक संचार का उदाहरण है।

2. **अन्तर्वेयक्तिक संचार –** जब दो व्यक्ति आमने सामने बैठे हों और उनके बीच वार्तालाप हो रहा है तो इसे अन्तर्वेयक्तिक संचार कहते हैं। इसमें एक व्यक्ति द्वारा कही गई बातों को दूसरा व्यक्ति ध्यान से सुनता है और अपनी प्रतिक्रिया देता है। दोनों व्यक्ति

आपस में एक–दूसरे के परिचित भी हो सकते हैं, अपरिचित भी हो सकते हैं और ये परिचय की शुरूआत भी हो सकती है।

संचार के इस प्रकार में दोनों ही पक्ष बारी–बारी से संप्रेषक और ग्रहणकर्ता की भूमिका में होते हैं। अन्तर्वेयक्तिक संचार किसी को प्रभावित करने, समझाने, प्रोत्साहित करने और प्रेरित करने का आदर्श जरिया है और संचार में यदि कोई असमंजस, अस्पष्टता और अनिश्चय हो तो उसे उसी समय दूर किया जा सकता है।

ये संचार का सबसे सार्वभौम स्वरूप है और आदर्श स्थिति है क्योंकि इसमें तत्काल फीडबैक संभव है।

अन्तर्वेयक्तिक संचार को समझने के लिये उत्तरोत्तर फोकस्ड और अनफोकस्ड संचार में भी विभाजित किया जाता है। बिहैवियर इन पब्लिक प्लेसेज नाम से अपने अध्ययन में इरविंग गॉफमैन का कहना है कि अन्तर्वैयक्तिक संचार अधिकांशत अनफोकस्ड प्रकार का ही होता है। अनफोकस्ड संचार की स्थिति वो है जब हम किसी भी ऐसे व्यक्ति को देखते हैं, उसका निरीक्षण करते हैं या उसकी बात सुनते हैं बिना उस व्यक्ति के संज्ञान के कि उसे देखा सुना जा रहा है। संचार की ये स्थिति बस, पार्क, मॉल या किसी भी सार्वजनिक स्थल पर संभव है।

फोकस्ड संचार वो है जिसमें शामिल लोग एक निश्चित उद्देश्य के साथ एक दूसरे के साथ वार्तालाप करते हैं और इस बात के प्रति पूरी तरह सजग होते हैं कि वो अपनी बातों, भाषा, हाव–भाव और व्यवहार, मौखिक और अमौखिक दोनों ही तरीकों से संचार कर रहे हैं।

3. **मध्य संचार** – कुछ विद्वानों ने संचार का ये रूप भी गिनाया है। ये वो स्थिति है जब दो व्यक्ति आपस में संचार के लिए किसी माध्यम का प्रयोग करते हैं, लेकिन वे एक–दूसरे के आमने सामने नहीं होते हैं। मीडियेटेड या मध्य संचार में लोग मोबाइल, टेलीफोन और इंटरनेट के माध्यम से अपने संदेशों का आदान–प्रदान करते हैं।

4. **समूह संचार** – समूह संचार, संचार की वो स्थिति है जिसमें दो से अधिक व्यक्ति आमने–सामने बैठकर विचार–विमर्श, संगोष्ठी आदि के माध्यम से अपनी भावनाओं, विचारों और संदेशों का आदान–प्रदान करते हैं। समूह संचार में सहमति और आम राय बनाने की गुंजाइश होती है। समूह संचार सामजिक समूहों को अपने हित–अहित पर चर्चा करने और कई स्थितियों में लॉबिंग करने या किसी एक मुद्दे की एडवोकेसी करने का

मौका देता है। इसमें समूह के सदस्य आमने–सामने बैठकर समान स्तर पर चर्चा कर सकते हैं। उदाहरण के लिये किसी मानवाधिकार संगठन के पदाधिकारियों की बैठक में मानवाधिकार उल्लंघन के मुद्दों पर चर्चा।

एक तरह से देखा जाए तो समूह संचार अन्तर्वैयक्तिक संचार का ही विस्तार है। हालांकि इसमें तत्काल फीडबैक की गुंजाइश कठिन और कम रहती है खास तौर पर यदि समूह का आकार बड़ा हो। वैसे भी समूह संचार में संदेशों के निर्वचन में वक्त लगता है और अपनी–अपनी क्षमता के तहत सदस्य संदेशों को ग्रहण करते हैं और उस पर अपनी प्रतिक्रिया देते हैं या नहीं देते हैं।

5. **जन संचार –** संचार की इस स्थिति में संदेशों को पूरे जन–समुदाय तक सम्प्रेषित किया जाता है। इसमें सभी वर्ग, कर्ण, समुदाय, सम्प्रदाय और विचारधारा के लोग शामिल होते हैं। जब एक व्यक्ति या संस्था तकनीकी और जन संचार के किसी माध्यम (अखबार, टेलीविजन या रेडियो) से बहुविध संदेशों को एक ही समय में विशाल जन समुदाय तक संप्रेषित करते हैं तो वो जन संचार कहलाता है। जन संचार में फीडबैक की गुंजाइश अपेक्षाकृत कम होती है और अगर होती भी है तो उसमें विलंब होता है।

जन संचार, संचार की वो स्थिति है जो संचार के दूसरे रूपों और प्रकारों से इस अर्थ में बिल्कुल भिन्न है कि यहां संप्रेषक और ग्रहणकर्ता दोनों का ही स्वरूप अन्तर्वैयक्तिक या समूह संचार से नितांत अलग होता है। जनसंचार में ऑडियेंस या दर्शक और श्रोता अभिन्न नहीं होते बल्कि भिन्न–भिन्न होते हैं और यहां तक कि सम्प्रेषक को इस बात की जानकारी नहीं हो पाती कि उसके द्वारा प्रकाशित और प्रसारित संदेशों को कौन–कौन ग्रहण कर रहा है।

जन संचार को अक्सर मास मीडिया के संदर्भ में ही समझा जाता है जैसे रेडियो, टेलीविजन और अखबार। लेकिन ध्यान रहे कि ये सिर्फ जन संचार की प्रक्रिया के माध्यम भर हैं और जन संचार संचार की एक जटिल स्थिति है। जन संचार माध्यमों और जन संचार की व्यापक शक्ति के बारे में कई तरह के दावे और अध्ययन हैं जिनकी अगले अध्यायों में विस्तार से चर्चा की जाएगी।

5.4.4. संचार के कार्य – हम जानते हैं कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य के अपने अस्तित्व और समाज की प्रगति के लिये संचार आवश्यक है। वास्तव में संचार भी मनुष्य के लिये उतना ही जरूरी है जितना की भोजन और पानी की बुनियादी आवश्यकता।

हम देखें तो संचार सभी सामाजिक गतिविधियों, कार्यों और निर्वचन के केन्द्र में होता है और संचार के माध्यम से ही समाज की विभिन्न संस्थाएं सफलता से अपने कार्य सम्पन्न कर सकती हैं। संचार एक सतत् प्रक्रिया है जो अनवरत चलती रहती है। अगर संचार पर विराम लग जाए तो जीवन प्रक्रिया ठप हो जाएगी।

संचार का मुख्य कार्य सूचना देना, निर्देश देना, शिक्षा प्रदान करना, समझना और प्रभाव डालना होता है। इस तरह मूल रूप से संचार संदेशों को रचनात्मक अर्थ प्रदान करके और लोगों के बीच संबंध स्थापित करता है जिससे उनके बीच सामुदायिक भावना को बढ़ावा मिले।

कल्पना करें कि आज के इस संचार युग में एक दिन के लिये सभी तरह के संचार संपर्क कट जाएं और आपके पास अपनी बात कहने का कोई साधन न हो और न ही कोई व्यक्ति जिससे आप बात कर सकें। किसी टी.वी., रेडियो, अखबार, कम्प्यूटर या मोबाइल फोन के बिना आपका जीवन कैसा होगा। संचार के जरिये ही हममें एक समुदाय में रहने और समाज का हिस्सा बनने की भावना को बल मिलता है। संचार से विमर्श और सहमति का विवेक, रचनाशीलता और शांति और सद्भावना को बढ़ावा मिलता है। संचार के कार्यों का अध्ययन निम्नांकित शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है –

1. **सूचना और समाचार देना –** कब चुनाव होने हैं, कौन–कौन से उम्मीदवार हैं, कौन सी नई फिल्म आने वाली है, किस विद्‌यालय में बच्चे का दाखिला कराना उचित रहेगा, किन विश्वविद्यालयों में कौन–कौन से कोर्सेस उपलब्ध हैं, हल्द्‌वानी से देहरादून के लिये आवागमन के कौन से साधन उपलब्ध हैं – जरा सोचिये ये सूचनाएं कैसे मिलती हैं। चूंकि संचार हमारे दैनन्दिन जिंदगी में इतना घुल गया है कि इस ओर हमारा ध्यान कभी नहीं जाता। ये सूचनाएं संचार के जरिये ही हम तक पहुंचती हैं। संचार से हमारे पास दो तरह की सूचनाएं पहुंचती हैं – चेतावनीपरक जिसमें मीडिया हमें आतंकवाद, बाढ़ और आपदा जैसे खतरों के प्रति आगाह करता है और दूसरी वैसी सूचनाएं जो हमारे दैनन्दिन कार्यकलाप के लिये महत्वपूर्ण हैं।

2. **मनोरंजन –** सभ्यता के विकास के साथ–साथ मनुष्य के जीवन में मनोरंजन का महत्त्व बढ़ता गया है। आज हम कल्पना भी नहीं कर सकते कि टेलीविजन, सिनेमा, इंटरनेट और वीडियो, डीवीडी के बिना हमारा जीवन कैसा होगा। मानव जीवन के दैनिक कार्यकलापों से उपजी नीरसता को दूर करने के लिये मनोरंजन अनिवार्य है। एक सर्वेक्षण

के अनुसार आज शहरों में किशोर और बच्चे कम से कम दो से तीन घंटे टेलीविजन के सामने व्यतीत करते हैं। उनके लिये टेलीविजन मनोरंजन का सशक्त माध्यम है। टेलीविजन, रेडियो और सिनेमा ही नहीं अखबारों में भी मनोरंजन के उद्‌देश्य से पहेलियां, खेल, गॉसिप, कॉमिक्स और मनोरंजक फीचर होते हैं। इसके अलावा लोकनृत्य और लोकगीत भी मनोरंजन करते हैं – जैसे रामलीला, पंडवाणी और झूमर।

3. **विमर्श और वार्ता** – कम्युनिकेशन गैप यानी संचार की कमी से राष्ट्रों के बीच, परिवारों के बीच, परिवार के सदस्यों के बीच ओर सामुदायिक जीवन में कई तरह की समस्याएं उत्पन्न होती हैं। सम्बन्धित पक्षों के बीच सद्‌भावनापूर्ण संचार और विमर्श और वार्ता के जरिये ऐसे मनमुटावों और मतभेदों को विवेकपूर्ण ढंग से दूर किया जा सकता है।

4. **निर्देश** – समाज में प्रभावशाली भूमिका निभाने वाले लोग संचार से अर्जित ज्ञान, विशेषज्ञता और कौशल प्राप्त करते हैं और संचार से ही निर्देश देने का काम करते हैं। राष्ट्रपति या राष्ट्राध्यक्ष का युद्ध या किसी आपात स्थिति में देश के नाम संबोधन, किसी कम्पनी का अपने कर्मचारियों को संबोधित कर अधिक काम करने के निर्देश देना और हड़ताल पर जाने के प्रति आगाह करना या माता–पिता का अपनी संतानों को पढ़ाई के लिये कहना संचार के निर्देश देने के कार्य है।

5. **शिक्षण और निर्वचन** – संचार सिर्फ सूचनाएं और तथ्यों को उपलब्ध कराने का काम नहीं करता है बल्कि उन्हें इंटरप्रेट यानी कि उनका निर्वचन भी करता है कि उन सूचनाओं का महत्त्व क्या है और उनकी प्रासंगिकता क्या है। जनसंचार माध्यम गेटकीपर के तौर पर काम करते हैं और उन्हें सूचनाओं को प्रकाशित और प्रसारित करते हैं जो पाठक और दर्शक समूह के लिये जरूरी होती हैं। इसके अलावा अखबारों के संपादकीय पृष्ठों पर प्रकाशित किये जाने वाले संपादकीय लेख और टिप्पणी भी घटनाओं और तथ्यों की व्याख्या और निर्वचन करते हैं।

सूचना के अधिकार, मानवाधिकार, स्त्री शिक्षा और बीमारियों से बचाव के बारे में लोगों को शिक्षित और जागरूक करने में संचार की महत्वपूर्ण भूमिका है।

6. **सांस्कृतिक प्रोत्साहन** – इस अर्थ में संचार की भूमिका समाजीकरण और सांस्कृतिक मूल्यों को पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानांतरित करने से है। संचार से ही मनुष्य अपने समाज की भाषा, परम्परा, विश्वास, मान्यता और मूल्यों की विरासत को प्राप्त करता है। देखने, सुनने और पढ़ने से ही हम ये बात सीखते हैं कि हमें विभिन्न परिस्थितियों में किस

प्रकार का व्यवहार करना चाहिये और हमसे क्या अपेक्षित है। दो देशों के बीच सद्भावनापूर्ण संबंधों में भी सांस्कृतिक आदान–प्रदान की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

7. **प्रभाव डालना –** संचार का एक महत्वपूर्ण काम है दूसरे पक्ष को प्रभावित करना और उसे किसी बात को करने या न करने के लिये समझाना या प्रेरित करना। अरस्तू के अनुसार परसुएशन या प्रभाव डालना इसलिये जरूरी है ताकि समाज में नियंत्रण स्थापित किया जा सके और शासन प्रबन्ध सुचारू ढंग से चलता रह सके।

5.4.5. संचार का लक्ष्य – संचार सामाजिक सन्दर्भों से जुड़ा है। संचार यदि समाज के विकास से जुड़ा है तो यह समाज के विकास को भी प्रभावित करता है। संचार ने हमारे जीवन के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक पक्षों को प्रभावित किया है। जनसंचार ने सूचना के अधिकार का विस्तार किया है, जिससे लोगों में राजनीतिक जागरूकता आई है। यद्यपि राजनीतिज्ञों ने जनमत को अपने पक्ष में करने के लिए, अपने राजनीतिक हितों के प्रचार के लिए सदैव मीडिया के संसाधनों का प्रयोग किया है, उदाहरणतः हम पाते हैं कि सारा विश्व समाचारों के लिए आर्थिक दृष्टि से और संसाधनों की दृष्टि से सशक्त देशों–अमेरिका और यूरोप पर निर्भर है। इन देशों की समाचार एजेंसियों द्वारा प्रेषित समाचारों के ही सहारे से जानकारियाँ पा सकते हैं क्योंकि विकासशील देशों के पास विकसित देशों के समान सशक्त संसाधन नहीं है। हमारे देश में भी समाचार पत्रों पर औद्योगिक घरानों का वर्चस्व है, रेडियो, टी.वी. आदि में सरकारी नियन्त्रण है। जनसंचार के द्वारा राजनीतिक लक्ष्यों को तीव्र और प्रभावशाली रूप में पूरा किया जा सकता है तो राजनीतिक लक्ष्य का यह प्रयास भी होता है कि लोगों को विकल्प का मौका दिये बिना उन्हें अपने विचारों के जाल में फँसा दिया जाए। जनसंचार राजनीतिक विभ्रम को फैलाने का हथियार भी बन सकता है। यह तो जनता के विवेक पर है कि वह किसी भी संदेश के सकारात्मक और नकारात्मक पहलू को समझे और उनसे प्रभावित हो।

सामाजिक क्षेत्र पर तो जनसंचार का प्रभाव बहुत गहरा है। एक समय था जब विदेश जाने पर लोगों का अपने सम्बन्धियों से सम्पर्क नहीं हो पाता था या बमुश्किल होता था, फिर चिट्ठियों द्वारा यह सम्पर्क कुछ सम्भव हुआ, फिर तार, टेलीफोन आदि के द्वारा सम्पर्क सूत्र बढ़ने लगे और अब ई–मेल, चैटिंग, टेली कॉन्फ्रेसिंग आदि के द्वारा एक दूसरे से बात करना इतना सहज हो गया है, जैसे आमने–सामने बात करना। यानी जनसंचार ने दुनिया को बहुत छोटा बना दिया है। हमारे दैनन्दिन जीवन में जनसंचार माध्यमों ने इतने

सशक्त ढंग से प्रवेश कर लिया है कि अब उनके बिना जीवन की कल्पना सम्भव नहीं है। प्रातःकाल से रात्रि तक अखबार, फोन, मोबाइल, कम्प्यूटर, इन्टरनेट, आदि हमारी पहुँच के दायरे में रहते हैं। एक मोबाइल से अब हमारा काम नहीं चलता, दो सिम वाले, मल्टी सिम वाले फोन आसानी से बाजार में उपलब्ध हैं। ये माध्यम हम तक सूचना पहुँचाते हैं, हमें ज्ञान–विज्ञान के विविध रूपों, क्षेत्रों से परिचित कराते हैं।

हमारी अभिरुचियों, प्रस्तुतियों, तरीकों, शैलियों को भी जनसंचार ने प्रभावित किया है। जनसंस्कृति और आभिजात्य संस्कृतियों के अन्तराल को कम करने का कार्य जनसंचार ने किया है। जनसंस्कृति मूलतः वेशभूषा, परम्पराएँ, संगीत, नृत्य, लोककथाएँ आदि के आधार पर निर्धारित होती हैं, जनसंचार के संसाधनों ने स्थान–स्थान की जनसंस्कृति से हमारा परिचय कराया है। इससे एक ओर हमें अन्य संस्कृतियों के वैशिष्ट्य से परिचित कराकर हमारी सांस्कृतिक अभिरुचियों को विस्तृत किया है तो हमारी मूल संस्कृति को देखें तो पाते हैं कि अब कुमाउॅनी या गढ़वाली बोलने वालों की संख्या विशेषतः शहरी क्षेत्रों में बहुत कम होती जा रही है, हमारी पारम्परिक पोशाक भी अब बहुत कम या परिवर्तित रूप में दिखाई देती है, हमारे अनेक व्यंजन अब जनमानस से लुप्त हो रहे हैं, लोकगीतों में भी परिवर्तन हुए हैं। दूसरी ओर नये नये व्यंजन, नई–नई वेशभूषाएँ हमें देखने को मिलती है। स्पष्ट है कि जनसंचार के माध्यम विभिन्न संस्कृतियों को एक दूसरे के नजदीक लाते हैं। 'कल्चरल एक्सचेंज' शब्द का प्रचलन जनसंचार की ही देन है। जनसंचार ने लोकसंस्कृति को विश्वमंच पर प्रस्तुत किया है तो दूसरी ओर अपसंस्कृति को भी लोकप्रिय बनाया है। जहाँ पहले लोग अपनी संस्कृति से ही जुड़ते थे, वैवाहिक सम्बन्धों में वे अपने दायरे से बाहर नहीं निकलते थे, आज भी हमें ऐसे उदाहरण मिलते हैं कि अपने दायरे से बाहर वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने वाले समाज द्वारा बहिष्कृत कर दिये जाते हैं, परन्तु अब यह दायरा धीरे–धीरे बढ़ रहा है और हम तमाम दूसरी संस्कृतियों को अपनाने लगे हैं।

5.4.6. संचार के इलेक्ट्रॉनिक माध्यम – इलेक्ट्रॉनिक मीडिया आज विश्व को संचालित करने वाला संचार माध्यम बन गया है। हालांकि प्रिन्ट मीडिया की आज भी संचार माध्यमों के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका है। आज इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का जादू सचमुच सर चढ़ कर बोल रहा है। मोटे तौर पर जब हम इलेक्ट्रॉनिक मीडिया शब्द का प्रयोग करते हैं तो प्रायः उसका अभिप्राय टेलीविजन से होता है। हालांकि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया सिर्फ टेलीविजन ही नहीं है। रेडियो को इलेक्ट्रानिक मीडिया की पहली बड़ी सीढ़ी माना जा

सकता है तो आज टेलीविजन को भी पीछे छोड़कर इंटरनेट तथा मोबाइल फोन इलेक्ट्रॉनिक मीडिया को नया विस्तार दे रहे हैं।

आज के युग में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की शक्ति, उसका प्रभाव और उसकी क्षमता किसी से भी छिपी नहीं है। बीसवीं सदी में पैदा हुए इस संचार माध्यम के सभी घटक जैसे रेडियो, टीवी, इंटरनेट और मोबाइल आज हर आधुनिक व्यक्ति के जीवन का अभिन्न अंग बन चुके हैं। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने हमारी जिन्दगी को भी काफी हद तक प्रभावित कर दिया है। इसने जानकारी का प्रसार तेज कर दिया है और उसकी विश्वसनीयता भी बढ़ा दी है।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया अपने स्वरूप में प्रिंट मीडिया से एक दम अलग है। भले ही इसका विकास प्रिंट मीडिया से ही हुआ है और प्रिंट मीडिया के ही आदर्शों और परम्पराओं की छाया में यह फलफूल रहा है। लेकिन इसका स्वरूप इसे कई मायनों में प्रिंट मीडिया से एकदम अलग बना देता है। बचपन में एक बोध कथा हममें से कइयों ने सुनी होगी जिसमें एक गुरू के चार शिष्य ज्ञान प्राप्त कर वापस जा रहे होते हैं तो उन्हें वन में एक शेर का अस्थिपिंजर मिलता है। एक उसे अपने मंत्र बल से जोड़कर उसका ढांचा खड़ा कर देता है। दूसरा उसमें मांच और खाल चढ़ा देता है और तीसरा उसमें जान फूंक देता है। इस बोध कथा के शेर की तरह ही प्रिंट मीडिया जहां खबरों का ढांचा खड़ा करता रहा है, उन्हें सजाता–संवारता रहा है, वहीं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने खबरों में जान फूंक दी है।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के मुख्य माध्यम निम्नलिखित हैं –

रेडिया – आधुनिक संचार क्रान्ति ने समाचार जगत में उथल–पुथल कर दी है। इस क्रान्ति ने पहले चरण में रेडियो तथा दूसरे चरण में टेलीविजन के आविष्कार ने संचार के पारम्परिक मुद्रणमाध्यमों को पीछे छोड़ते हुए समचार प्रेषण की नई पद्धति को विकसित किया। यही नहीं पूरे विश्व के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जगत में इस नई तकनीक ने चमत्कार कर दिया है। रेडियो, इलैक्ट्रॉनिक मीडिया का महत्वपूर्ण श्रव्य माध्यम है।

रेडियो की संभावनायें बहुत अधिक है। बशर्ते की कार्यक्रम व्यापक और यथार्थ रूप में रुचिकर हों। यह आवश्यक है कि जिस देश के लिए कार्यक्रम प्रस्तुत किए जा रहे हों, वहां के प्रतिभाशाली लोगों द्वारा ही ये कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाएं और उनके सहयोग से इन्हें प्रभावशाली बनाया जाये। निश्चय ही एशिया और अफ्रीका की जनता आजकल

उपलब्ध होने वाले पश्चिमी प्रसारणों में दिलचस्पी नहीं लेती किन्तु वह स्वयं अपनी भाषा में और अपनी पृष्ठभूमि पर आधारित तकनीकी रूप से बेहतर कार्यक्रम सुनना चाहेगी, जिसमें प्रगतिशील देशों के ऐसे संदेश शामिल किए जा सकते हैं। जिनसे कार्यक्रम की उत्कृष्टता में वृद्धि हो। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, रेडिया तरंगों का माध्यम और इस पर प्रसारित एक भी गलत शब्द श्रोताओं पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है। अतः प्रसारित किये जाने वाले प्रोग्राम की विषय वस्तु का असीम महत्व है। कार्यक्रम तैयार करने वाली व्यक्ति का दायित्व अत्यधिक चुनौतीपूर्ण है। रेडियो लेखन एक कला है और इसके लिए कोई फार्मूला निश्चित नहीं किया जा सकता। तथापि लगातार परिश्रम, अनुसंधान और नई तकनीकों को अपनाकर इस कला में निखार लाया जा सकता है।

टेलीविजन – टेलीविजन जनसंचार का बहुत ही प्रभावशाली और युवा माध्यम है। ध्वनि के साथ–साथ चित्रों को प्रस्तुत करके इस माध्यम द्वारा मानव व्यक्तित्व को भी प्रस्तुत किया जाता है और इस प्रकार इसका जनता पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। यह दृश्य–श्रव्य माध्यम है और इसकी कोई भौगोलिक सीमा नहीं होती। इसलिए इसे सार्वभौमिक माध्यम (Global Media) भी कहा जाता है। टेलीविजन में कलाकार अथवा संचारक मशीन के हाथ में कठपुतली होता है, क्योंकि उसे तरंगों, ध्वनि और प्रकाश आदि कई तत्वों पर निर्भर रहना पड़ता है। यह वस्तुतः फिल्म और रेडियो का संकर माध्यम है। इस माध्यम में दर्शक–श्रोता का नियंत्रण रहता है। वे जब भी चाहे, इसे बंद कर सकते हैं। यह माध्यम अन्य माध्यमों की तुलना में महंगा है। इसका एक और नकारात्मक पहलू यह भी है कि यह दर्शकों–श्रोताओं में निष्क्रियता और अकर्मण्यता पैदा करता है। बच्चों पर टेलीविजन के प्रभाव पर अमेरिका में जो शोध कार्य हुआ है, उसके निष्कर्ष बेहद निराशाजनक है। वैज्ञानिकों का मत है कि टेलीविजन बच्चों की मासूमियत को तबाह कर देता है और वे एकदम प्रौढ़वस्था में पहुंच जाते हैं। उनका बौद्धिक और मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है और वे यथार्थ से जूझने की क्षमता खो बैठते हैं।

फिल्म – फिल्म अथवा सिनेमा संचार का एक अत्यन्त शक्तिशाली और प्रभावकारी माध्यम है। संचार माध्यमों के कुछ विशेषज्ञ इसे केवल लोकरंजन का माध्यम मानते हैं जिसमें कायिक और वाचिक दोनों तत्वों का प्राधान्य रहता है। संचार विज्ञान के कुछ विद्वान ऐसे भी हैं जो सिनेमा को ऑपेरा, चित्रकला अथवा वास्तुकला की तरह कला का एक स्वतंत्र रूप मानते हैं। वस्तुतः फिल्म निदेशक का ही माध्यम होता है और जिस कलात्मक

ढंग से वह कलाकार को कैमरे के सामने प्रस्तुत करता है, उस पर ही अक्सर फिल्म की सफलता अथवा असफलता निर्भर करती है। पटकथा, संवाद, संगीत, नृत्य फोटोग्राफी, संपादन आदि तत्व भी फिल्म की कामयाबी के लिए आवश्यक घटक है। लेकिन इन्हें किसी सीमा तक आधुनिक इलैक्ट्रॉनिक प्रणालियों से विनियमित किया जा सकता है। फिल्म श्रव्य–दृश्य माध्यम है। इसमें संचार की प्रक्रिया तात्कालिक होती है। यह माध्यम विश्वसनीय और व्यापक होता है। फिल्म और टेलीविजन में कोई आधारभूत भेद नहीं है। दोनों ही आकर्षक और बन्धनकारी माध्यम है। अन्तर केवल स्क्रीन का है। फिल्मों में स्क्रीन बड़ा होने के कारण कलाकार का त्रियामी रूप देखा जा सकता है।

5.5. अपनी प्रगति जांचे (Check your progress)

नीचे कुछ प्रश्न दिए गए हैं उनके उत्तर देने का प्रयास करें :–

(i) पार्सिंग ने संचार के कितने स्तर बताए हैं?

(ii) श्रेष्ठ संचार के कितने सूत्र माने जाते हैं?

(iii) पार्सिंग ने संचार के कितने घटक बताए हैं?

(iv) संचार का मुख्य कार्य क्या है?

5.6. सारांश (Summary) – संचार की अवधारणा और प्रक्रिया की जटिलताओं को समझने के सिलसिले में इस अध्याय में आपने ये जाना कि संचार की कई स्थितियां होती हैं और संचार को कई प्रकार में विभाजित कर सकते हैं। अन्तःवैयक्तिक संचार – जब व्यक्ति अपने आप से संचार करता है, अन्तर्वैयक्तिक संचार – जब संचार दो व्यक्तियों के बीच में होता है, समूह संचार जो दो से अधिक व्यक्तियों के बीच होता है और जन संचार जो विशाल जनसमुदाय के लिये संचार है। संचार की इन स्थितियों में अंतर होने के साथ–साथ अंतर्संबंध भी है और एक तरह से संचार के ये विभिन्न प्रकार एक–दूसरे का लघु रूप या विस्तार ही है। इन सबमें जन संचार इसलिये अलग है क्योंकि इसमें तकनीकी माध्यम का प्रयोग किया जाता है। संचार के इन सभी प्रकारों के आधार में अन्तःवैयक्तिक संचार है जो सभी संचार स्थितियों का मूल है क्योंकि किसी भी तरह के संचार के पहले व्यक्ति अपने आप से संचार करता है चाहे वो कल्पना हो, सोच विचार हो या तर्कवितर्क। मैक्वेल का संचार पिरामिड इसी अवधारणा को पुष्ट करता है।

राजनीति और आर्थि परिदृश्य के साथ–साथ संचार ने सांस्कृतिक, साहित्यिक, धार्मिक या नैनिक क्षेत्र में भी बहुत प्रभाव डाला है और आज संचार पूरे समाज के लिए

अपरिहार्य हो चुका है। जनसंचार के संसाधनों ने यदि हमारे सामने एक विस्तृत संसर को उद्घाटित किया है, हमारी कल्पनाओं को उड़ने के लिए पंख दिये हैं, हमें ज्ञान–विज्ञान के विविध क्षेत्रों से परिचित कराया है, हमारे चिन्तन को नये आयाम दिये हैं तो हमारे सांस्कृतिक, सामाजिक मानदण्डों को भी परिवर्तित किया है। संचार की प्रक्रिया द्वारा हम जनसंचार के प्रमुख कारकों के विषय में अच्छी तरह से परिचित होते हैं। इस प्रक्रिया में हम वक्ता, स्रोत, संदेश, संदेश माध्यम और संदेश को ग्रहण करने वाले श्रोताओं के महत्व से अच्छी तरह से परिचित होते हैं। जनसंचार की विशेषताओं, लक्ष्य तथा कार्य से परिचित होते हैं।

5.7. सूचक शब्द (Key Words)

सर्पिल प्रक्रिया, सम्प्रेषण, फीडबैक, एनकोडिंग, समूह संचार।

सर्पिल प्रक्रिया – पर्सिंग का मानना है कि संचार प्रक्रिया गत्यात्मक प्रकृति की है। इस प्रक्रिया में जो संदेश भेजा जाता है वह संदेश पाने वाले के पास सीधे सीधे नहीं पहुँचता अपितु घुमावदार तरीके से पहुँचता है। संदेश पहुंचने के बाद संदेश पाने वाले की प्रतिक्रिया होती है जिसे फीडबैक कहा जाता है। संचार की प्रक्रिया तभी पूरी होती है जब फीडबैक मिलता है।

सम्प्रेषण – सम्प्रेषण का आशय है विचाराभिव्यक्ति। आज यह शब्द संचार के सन्दर्भ में विशेषतः प्रयुक्त होता है।

फीडबैक – फीडबैक रिसीवर की संदेश के प्रति प्रतिक्रिया है जो स्रोत से प्रसारित होने वाले परवर्ती संदेशों के स्वरूप और अर्थ को प्रभावित करता है। फीडबैक संचार की प्रक्रिया को दोबारा स्रोत की दिशा में यानी की विपरीत दिशा में मोड़ देता है।

एनकोडिंग – संदेश का स्रोत संचार की प्रक्रिया की शुरूआत करता है। अपने संचार कौशल का उपयोग करके वो संदेश गढ़ता है। संचार का स्रोत एक व्यक्ति भी हो सकता है, व्यक्तियों का समूह भी या कोई संस्थान भी। संदेश का प्रेषण करने वाले स्त्रोत को संदेश के ग्रहणकर्ताओं का अनुमान हो भी सकता है और नहीं भी।

समूह संचार – संचार की वह स्थिति जिसमें दो से अधिक व्यक्ति आमने–सामने बैठकर विचार–विमर्श, संगोष्ठी आदि के माध्यम से अपनी भावनाओं, विचारों और संदेशों का आदान–प्रदान करते हैं।

5.8 स्वयं मूल्यांकन हेतु प्रश्न (Self Assessment Questions) :-

6. संचार का शाब्दिक अर्थ क्या है?
7. संचार के महत्व को समझाइये।
8. संचार के मुख्य कार्य क्या हैं?
9. संचार की प्रक्रिया को विस्तार से समझाइये?

5.9. अपनी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर (Answer for check your progress):-

1. डस्टर।
2. 5 सूत्र।
3. 5 घटक
4. संदेश देना।

5.10. सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference):-

1. इस्सर, देवेन्द्र : जनमाध्यम, सम्प्रेषण और विकास – इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, 1995।
2. पारख, जवरीमल : जनसंचार माध्यमों का सामाजिक चरित्र – अनामिका पब्लिशर्स, दिल्ली।
3. विलियम्स, रेमण्ड : कम्यूनिकेशन – पेंग्विन बुक्स, दिल्ली।
4. मास कम्युनिकेशन – केवल कुमार – जायको 1994।
5. प्रो. हरिमोहन : आधुनिक जनसंचार और हिन्दी, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली।
6. भानावत, संजीव : पत्रकारिता का इतिहास एवं जनसंचार माध्यम, युनिवर्सिटी, पब्लिकेशन, जयपुर, 2000।

Subject : लोक प्रशासन	
Course Code :	Author :
Lesson No. : **6**	Vetter :
निर्णय निर्माण	

अध्याय – 6 निर्णय निर्माण

6.1 अधिगम उद्देश्य **(Learning Objectives)**

6.2. प्रस्तावना **(Introduction)**

6.3. अध्ययन के मुख्य बिन्दु **(Main Point of Text)**

6.3.1. निर्णय निर्माण के अर्थ व परिभाषा

6.3.2. निर्णय निर्माण की क्लासिकी अवधारणा पर साईमन के विचार

6.4. अध्याय के आगे का प्रमुख भाग **(Further Main Body of Text)**

6.4.1. प्रशासन में निर्णय–निर्माण कार्य

6.4.2. निर्णय निर्माण में चयन व व्यवहार की भूमिका

6.4.3. निर्णय निर्माण में तथ्य व मूल्य

6.4.4. निर्णय निर्माण में तर्क संगति

6.4.5. निर्णय निर्माण के मॉडल

6.4.6. प्रभाव के मॉडल

6.4.7. साईमन के निर्णय निर्माण के कार्यो का आलोचनात्मक मूल्यांकन।

6.5. अपनी प्रगति जांचे **(Check your progress)**

6.6. सारांश **(Summary)**

6.7. सूचक शब्द **(Key Words)**

6.8. स्वयं मूल्यांकन हेतु प्रश्न **(Self Assignment Questions)**

6.9. अपनी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर (Answer for Check your progress)

6.10. सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference)

6.1 अधिगम उद्देश्य (Learning Objectives)

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप निम्न विषयों को समझ पाओगे :–

- निर्णय निर्माण में हर्बर्ट साईमन का योगदान।
- निर्णय निर्माण में रूचि और व्यवहार की भूमिका।
- तर्कसंगत, परिबद्ध तर्कसंगति और तषष्टिकरण निर्णयों की अवधारणा।
- निर्णय निर्माण में तन्त्रों और मूल्य का क्षेत्र।
- आर्थिक व्यक्ति तथा प्रशासनिक व्यक्ति के बीच विभेद।

6.2. प्रस्तावना (Introduction)

हर्बर्ट ए. साइमन को लोक प्रशासन के अध्ययन की व्यवहारात्मक दषष्टिकोण का प्रमुख प्रतिपादक माना जाता है। वे एक अर्थशास्त्री व राजनीति–विज्ञान के क्षेत्र से सम्बद्धित थे। उनके अधिकांश शोध कार्यों में संगठन से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं जैसे निर्णय–निर्माण, मानव व्यवहार इत्यादि पर विवेचना की गई है। संगठन के अध्ययन में उन्होंने अनुभववाद का समर्थन किया है। निर्णय–निर्माण प्रक्रिया का अध्ययन उनका सर्वाधिक उल्लेखनीय योगदान रहा है। अपनी पुस्तक 'एडमिनिस्ट्रेटिव बिहेवियर' में उन्होंने दष्ढ़तापूर्वक कहा है कि किसी भी संगठन के स्वरूप को उसके निर्णय–निर्माण प्रक्रिया के माध्यम से समझा जा सकता है। उन्होंने निर्णय–निर्माण प्रक्रिया में मानव व्यवहार और मूल्य प्राथमिकताओं (वरीयताओं) के बीच सम्बन्ध का विश्लेषण भी दिया। उनका यह भी मानना है कि तर्कसंगति और व्यवहार के बीच की दूरी (अंतराल) को निर्णय की अवधारणा से पूरा किया जा सकता है।

साइमन विशेष रूप से 'परिबद्ध तर्कसंगति' और 'तुष्टिकरण' की अवधारणाओं के लिए जाने जाते हैं। उन्होंने 'प्रशासन के सिद्धांतों' का निर्माण करने वाले क्लासिकी सिद्धांतों का जोरदार विरोध किया और इन सिद्धांतों को प्रशासन की 'कहावतों' की संज्ञा दी। साइमन संगठनों में सामूहिक गतिशीलता पर मेरी पार्कर फोलेट के विचारों, एल्टन मेयो के मानवीय संबंध दषष्टिकोण और चेस्टर बर्नार्ड की 'फंक्शन्स ऑफ दि एक्सिक्यूटिव' से प्रभावित हुए। उन्होंने लोक प्रशासन के अध्ययन के लिए राजनीतिक–प्रशासन द्विभाजन के विचार को अस्वीकार करते हुए अनुभवजन्य दषष्टिकोण का अनुसरण करने का सुझाव दिया। इस इकाई में हम संगठनात्मक प्रक्रिया की मुख्य संकल्पनाओं की चर्चा करेंगे।

6.3. अध्ययन के मुख्य बिन्दु (Main Point of Text)

6.3.1. लोक चयन उपागम का अर्थ : लोक चयन उपागम का प्रथम बार उपयोग साठ के दशक के अंत में किया गया था एवं 70 के दशक में लोक प्रशासन के एक विषय के रूप में इसे महत्वपूर्ण स्थान मिला। विसेंट ओस्ट्रॅम (Vincent Ostrom), जो कि लोक चयन उपागम के विद्वान है एवं इस उपागम को लोक प्रशासन का उपयुक्त विषय मानते हैं, उनके अनुसार लोक प्रशासन के विद्वानों को पारम्परिक नौकरशाही उपागम से लोक चयन उपागम की ओर जाना चाहिए।

लोक चयन का वास्तविकता में राजनीतिक गतिविधियों, संस्थाओं व लोक नीति को समझने के लिए अर्थशास्त्र प्रवधि का प्रयोग है। इसी से केन्द्रबिन्दु दक्षता से तार्किकता की ओर हो जाता है। यह अनुमान डेनिस मयूलर (Dennis Mueller) के शब्दों से और स्पष्ट होता है, जो लोक चयन उपागम को परिभाषित करते हैं, ''निर्णय निर्माण में गौर बाजार को आर्थिक अध्ययन या राजनीतिक विज्ञान में सामान्य अर्थशास्त्र को लागू करना लोक चयन है। लोक चयन उपागम का विषय क्षेत्र राजनीति विज्ञान के ही समान है। राज्य का सिद्धांत, निर्वाचन नियम, निर्वाचकों का व्यवहार, दलिय राजनीति, नौकरशाही आदि। लोक चयन की विधियाँ अर्थशास्त्र के ही समान है (Mueller, 1979)। उपागम, आगे नौकरशाह या अधिकारी के विशिष्ट व्यवहार का अनुमानों व सैद्धांतिक ढाँचे के आधार पर चर्चा करता है।

मूलतः लोक चयन उपागम लोकतांत्रिक प्रशासनिक व्यवस्था का समर्थन करता है। अर्थात् लोकतांत्रिक प्रशासनिक व्यवस्था का उद्देश्य लोगों को वो उपलब्ध कराना है, जो उनहें चाहिए। लोक चयन उपागम उस प्रक्रिया का अध्ययन करता है, जो लोग चयन व वरीयता से स्पष्ट करते हैं तथा उपागम लोगों या नागरिकों के चयन को विस्तारित करने पर बल देता है, लोकप्रिय चयन के उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए सरकार के कार्य नागरिकों के हितों व मूल्यों से मेल खाते हुए होने चाहिए।

6.3.2. निर्णय निर्माण की क्लासिकी अवधारणा पर साईमन के विचार : साइमन ने मुख्य रूप से विभिन्न विचारकों द्वारा प्रतिपादित किए गए क्लासिकी सिद्धांतों की आलोचना की और उन्होंने 'प्रशासन के सिद्धांतों' को 'मात्र कहावतों' की संज्ञा देते हुए परम्परागत दृष्टिकोण में निहित संकीर्णता की आलोचना की और इन्हें परस्पर विरोधी व आंतरिक रूप से असंगत माना। साइमन ने अपने लेख 'दि प्रोर्वब्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' (The Proverbs

of Administration – 1946) में कहा कि, ''कहावतों या मुहावरों को अत्याधिक रूप से उद्धृत किए जाने के बारे में एक तथ्य यह है कि ये अधिकांशतः सदैव परस्पर विरोधी युग्मों के रूप में कहते हैं। 'Look before you leap' एक कहावत है तो एक अन्य परस्पर विरोधी कहावत है – जो डरा वो मरा (He who hesitates is lost) प्रायः प्रत्येक सिद्धांत के लिए हमें समान रूप से कपटपूर्ण और स्वीकार परस्पर विरोधी सिद्धांत मिल सकते हैं। यद्यपि युग्म के दो सिद्धांत ठीक–ठीक विपरीत संगठनात्मक संस्तुतियों की ओर ले जाएंगे परन्तु यह निर्दिष्ट करने के लिए सिद्धांत में कुछ नहीं है कि किसी का प्रयोग (लागू) करना उपयुक्त है। उदाहरण के लिए 'समादेश की एकता' (Unity of Command) और 'नियंत्रण–विस्तार' (Span of Control) के सिद्धांतों में विद्यमान अस्पष्टता इसी तथ्य की ओर संकेत करती है। समादेश की एकता बताता है कि किस प्रकार संगठन में कर्मचारी को केवल एक ही उच्च अधिकारी से आदेश प्राप्त होना चाहिए, जबकि नियंत्रण–विस्तार सिद्धांत में उच्च अधिकारी कितने अधीनस्थों को नियंत्रित कर सकता है (अर्थात् अधीनस्थों की संख्या) का उल्लेख है।

साइमन के अनुसार, दोनों सिद्धांत परस्पर विरोधी और अस्पष्ट है और इनमें वास्तविक स्थितियों का विस्तृत अनुसंधान न होने के कारण वह इन्हें परस्पर विरोधी कहावतें मानता है। साइमन के अनुसार स्थितियों का पर्याप्त निदान किए बिना ही सिद्धांतों को परिभाषित किया गया है। साइमन का कहना है कि प्रस्ताव (Proposition) की विशुद्धता (Correctness) निर्धारित करने के लिए प्रत्यक्ष रूप से उसकी तुलना अनुभव की जानी चाहिए और उसमें यह तथ्य भी शामिल होने चाहिए। यह तथ्य तर्कसंगत (Logical Reasoning) द्वारा उन अन्य प्रस्तावों की ओर प्रवृत्त हो जिनकी तुलना अनुभव के साथ की जा सके (साइमन, 1997)। इस तरह साइमन के अनुसार प्रशासन के सिद्धांतों में वैज्ञानिक वैधता और व्यापक प्रासंगिकता का अभाव है, तथा संगठन के सिद्धांत और पद्धति (व्यवहार) के बीच एक बड़ा अंतराल है। उन्होंने सिद्धांतों के स्थान पर निर्णय–निर्माण का सुझाव दिया, क्योंकि उनका मानना है कि निर्णय निर्माण एक व्यापक प्रक्रिया है और यह संगठनात्मक विश्लेषण के लिए एक आधार होगी, जो कि सिद्धांत नहीं कर सकते।

6.4. अध्याय के आगे का मुख्य भाग (Further Main Body of Text)

6.4.1. प्रशासन में निर्णय निर्माण कार्य : साइमन का मानना है कि निर्णय–निर्माण प्रशासनिक क्रिया का मूल होना चाहिए और उन्होंने अवलोकन किया कि संगठन एक संस्था है जिसकी संरचना निर्णयकर्ता करते हैं। अपनी पुस्तक प्रशासनिक व्यवहार (Administrative Behaviour) (1997) में उन्होंने कहा कि 'निर्णय–निर्माण प्रशासन का मुख्य केन्द्र–बिंदु (Focus) है और प्रशासनिक सिद्धांत की शब्दावली नए तर्क (Logic) और मानव रुचि को मनोविज्ञान से प्राप्त की जानी चाहिए।' साइमन ने निर्णय पर फोकस वाले तर्कसंगत प्रत्यक्षवाद (Logical Positivism) के सिद्धांतों और क्रिया–विधि पर आधारित प्रशासन की नई संकल्पना प्रतिपादित की (उमापति और अन्य, Umapathy et. al., 2010)। इस तरह निर्णय–निर्माण की संकल्पना प्रशासन के तुल्य (समान) थी, जिसमें फेयोल और गुल्लिक द्वारा प्रस्तुत क्रमशः POCCC और POSDCORB की गतिविधियाँ शमिल थीं।

साइमन का कहना था कि संगठन में लिया गया प्रत्येक निर्णय केवल प्रशासनिक यथार्थताओं और मूल्यों के तथ्यों पर आधारित नहीं होता। क्रिया (कार्य) को सम्पन्न करना सुनिश्चित करने वाली निर्णय–निर्माण प्रक्रियाएँ और विधियाँ भी समान महत्त्व रखती है, क्योंकि प्रशासन केवल 'कार्य करवाने' की कला है। उनका मानना था कि प्रशासनिक विश्लेषण में रुचि जोकि क्रिया को आगे बढ़ाती है, पर पर्याप्त ध्यान केन्द्रित नहीं किया जाता। साइमन के अनुसार, 'करने' की वास्तविक प्रक्रिया की अपेक्षा 'क्या करना है', इसका निर्धारण करने पर ज्यादा ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता है और इस संदर्भ में, निर्णय–निर्माण रुचि की प्रक्रिया पर कार्य करता है जो आगे क्रिया को अग्रसर करता है। इस तरह साइमन ने बताया कि किसी भी संगठन के इस आयाम को समझना महत्वपूर्ण है क्योंकि यह संगठन में कार्यरत व्यक्ति के व्यवहार में अन्तर्निहित होती है। इसके बिना प्रशासन का अध्ययन अधिकांशतः अपर्याप्त होगा (इग्नू पाठ्यसामग्री IGNOU Material, 2017)।

6.4.2. निर्णय–निर्माण में चयन व व्यवहार की भूमिका : निर्णय–निर्माण और युक्तिसंगत रुचि या चयन दृष्टिकोण पर साइमन का प्रमुख कार्य–जो बाद में सामने आया, वे उनके डॉक्टोरल अध्ययन पर आधारित थे, जिनमें उन व्यवहारात्मक और संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का विश्लेषण किया गया था, जो मनुष्य की युक्तिसंगत चयन या उसके द्वारा लिए जाने वाले निर्णय में अंतर्निहित होते हैं। साइमन के अनुसार, व्यक्ति द्वारा लिया गया

कोई भी प्रशासनिक निर्णय या चयन, यहाँ तक कि व्यक्तिगत निर्णय प्रयुक्त की जाने वाली व्यवहारात्मक प्रक्रिया पर निर्भर करता है। यह अधिकांशतः गतिविधियों या विकल्पों के सचेतन या अचेतन चयन पर आधारित होता है। 'चयन' से अभिप्राय नीति–निर्माताओं की उपलब्ध कार्य के अन्य तरीकों में से किसी एक कार्य के तरीके को वरीयता देना है। इस तरह निर्धारित किया गया काम का तरीका या विभिन्न चयनों और यहाँ तक कि चयन का अंतिम प्रवरण व्यक्ति या संगठन की व्यवहारात्मक और संज्ञानात्मक तार्किकता पर आधारित होता है।

किसी भी दैनिक प्रक्रिया में चयन और क्रिया प्रत्यक्ष रूप से संबद्ध होते हैं या हम कह सकते हैं कि यह एक प्रकार से स्थापित सहज क्रिया है। उदाहरण के लिए, किसी भी संगठन में, कर्मचारियों की छुट्टियों का रिकार्ड रखना, तनख्वाह की अदायगी इत्यादि जैसी दैनिक प्रक्रियाओं के लिए संबद्ध कर्मचारियों की चयनों या क्रियाओं के लिए कुछ सोचना या करना नहीं पड़ता क्योंकि अनुसरण की जाने वाली मानक क्रिया–विधियों और गतिविधियों के बीच सुस्थापित सहज क्रिया शामिल होती है। इस मामले में मानव संसाधन प्रबंधक द्वारा की जाने वाली गतिविधियाँ भले ही तर्कसंगत क्रिया है, लेकिन इसमें सचेतनता (Consciousness) अंतर्निहित नहीं है। रोजमर्रा की जाने वाली ऐसी नेमी गतिविधियाँ, जिनकी पूर्व–निर्धारित मानक क्रियाविधियाँ होती हैं अनुकूलित सजहक्रिया कहलाती है।

दूसरी ओर, संगठन में गैर–नेमी या आसाधारण स्थितियाँ भी होती है, जिनके लिए चयनों और क्रियाओं का सचेतन रूप से निर्णय लेना पड़ता है। ऐसे मामलों में 'चयन' क्रियाकलापों की जटिल श्रृंखला का परिणाम है, जिसे 'योजना' या 'डिजाइन' क्रियाकलाप कहते हैं। उदाहरण के लिए यदि एक विभाग या संगठन द्वारा नया कार्यक्रम या योजना कार्यान्वित की जानी है, इसके लिए कार्यक्रम का डिजाइन तैयार किया जाएगा, चयनों और विभिन्न क्रियाओं की पहचान करके उन्हें विचारमंथन चर्चाओं, व्यापक विश्लेषण के आधार अपने निर्णयों को लागू करके व्यवस्थित ढंग से योजनाबद्ध किया जाएगा। इस तरह तैयार की गई (Work-out) विस्तृत योजना के आधार पर कार्यक्रम को कार्यान्वित करके कर्मचारी द्वारा व्यवहार की श्रृंखला (उदाहरण, दोस्ताना व्यवहार, सख्त रवैया आदि) को व्यक्त किया जाता है और इस योजनाबद्ध विभिन्न क्रियाकलापों को निर्धारित किए गए तरीके से कार्यान्वित किया जाना है। इस प्रकार चयनयों या निर्णयों के चेतन या अचेतन चयन तक

पहुँचने के लिए साइमन ने निर्णय–निर्माण प्रक्रिया में तीन प्रकार के कार्यकलापों को निर्दिष्ट किया, जो इस प्रकार है :

1. **सूझ–बूझ क्रियाकलाप (Intelligence Activity) :** निर्णय लेने के अवसर तलाश करना संगठन के अध्यक्ष या एक्ज़िक्यूटिव को संगठन का विश्लेषण करना और समझना होगा तथा हल की जाने वाली समस्या की पहचान करनी होगी।

2. **डिज़ाइन क्रियाकलाप (Design Activity) :** इसमें समस्या को हल करने की क्रिया का तरीका विकसित करना अंतर्निहित है। एक बार समस्या की पहचान हो जाने के बाद, अध्यक्ष या कार्यकारी को विशिष्ट निर्धारित समस्या का हल प्राप्त करने के लिए सभी संभव वैकल्पिक प्रक्रियाओं की खोज प्रारम्भ करनी चाहिए।

3. **चयन क्रियाकलाप (Choice Activity)** : उपलब्ध सभी विकल्पों में से एक सर्वोत्तम संभावित हल का चयन करना रुचि क्रियाकलाप है। संगठनात्मक लक्ष्यों को पूरा करने हेतु निर्णयकर्ता को किसी एक ऐसे विकल्प या क्रिया–प्रणाली का चयन करना चाहिए जो संगठन के लक्ष्य के हितों के अनुरूप हो।

उपर्युक्त अस्वस्थाओं के लिए निर्णयकर्ता में कुछ कौशल – जैसे परख, सृजनात्मकता, अनुभव और परिणामात्मक विश्लेषण होना जरूरी है। हालांकि निर्णय–निर्माण प्रक्रिया अत्यंत सरल प्रतीत हो सकती है, किन्तु वास्तव में यह अपेक्षाकृत जटिल है। वर्णित किए गए प्रत्येक क्रियाकलाप के अंतर्गत भी तीन गतिविधियाँ सम्मिलित है। 'आसूचना क्रियाकलाप' में सभी तीनों गतिविधियाँ जैसे आसूचना, डिजाइन और चयन क्रियाकलाप अंतर्निहित है। इस तरह इन्हें 'जटिल परिस्थितियाँ (Wheels within Wheels) भी कहा जा सकता है।

6.4.3. निर्णय निर्माण में तथ्य व मूल्य : साइमन के अनुसार प्रत्येक निर्णय तथ्यों और मूल्यों के तार्किक प्रस्तावों पर आधारित होता है। साइमन का कहना है कि 'किसी भी अन्य विज्ञान की भाँति प्रशासनिक विज्ञान भी केवल मात्र तथ्यात्मक निर्णयों से संबद्ध है। विज्ञान के अध्ययन में नैतिक (मूल्य) कथनों का कोई स्थान नहीं है (कोई महत्त्व नहीं

रखते)'' (साइमन, 1997)। क्रिया की प्रणाली की प्रभाविक्ता किसी निश्चित समय में उपलब्ध सूचना पर निर्भर करती है, जो कि तथ्यों से सम्बन्धित है। क्रिया की प्रणाली की प्रभाविता भी निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए उस निर्णय की क्षमता पर निर्भर करती है। सही रुचि (विकल्प) का चयन करना भी व्यक्ति की पसंद से सम्बद्धित होता है। यह मूल्यों के प्रश्न से जुड़ा है।

सरल भाषा में कहें तो, तथ्य वास्तविकता का विवरण है। इन्हें दृष्टव्य साधनों द्वारा सिद्ध (प्रमाणित) किया जा सकता है। दूसरी ओर, मूल्य वरीयता या पसंद की अभिव्यक्ति है। इन्हें केवल व्यक्तिपरकता के साथ माना व स्वीकारा जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि किसी विभाग से कोई सेवा ली जानी हो तो उस सेवा को प्राप्त करने के लिए वह दिशा–निर्देश नियम या विनियम हो सकते हैं जिनका अनुपालन करना होगा। यह निर्णय लेने में विद्यमान तथ्यों के समुच्य के अलावा और कुछ नहीं है। दूसरी ओर, लिया जाने वाला निर्णय व्यक्ति या संगठन की वरीयता (पसंद) पर निर्भर करता है। यह या तो नियमों और विनियमों का अनुपालन करना हो सकता है या कार्य करवाने के लिए प्रभाव का सहारा लेना या जरूरत की पूर्ति के लिए भ्रष्ट गतिविधियों का प्रयोग करना भी हो सकता है। संगठन में व्यक्ति का व्यवहार संगठन के लक्ष्यों व उद्देश्यों द्वारा निर्धारित होता है। समुचित लक्ष्यों और उद्देश्यों की स्थापना किए बिना संगठन निरर्थक होता है। संगठन का प्रयोजन संगठन को दिशा और निर्देश आधार (Frame of Reference) प्रदान करता है और यह निर्धारित करता है कि क्या–क्या किया जाना चाहिए और क्या नहीं किया जाना चाहिए। इस प्रक्रिया में छोटे से छोटा निर्णय जो निश्चित क्रियाओं को नियंत्रित करता है अनिवार्यतः प्रयोजन और विधि से सम्बन्धित वृहत्तर निर्णयों का अनुप्रयोग है (साइमन – Simon, op.cit.) चलते हुए व्यक्ति का उदाहरण देता है। वह प्रक्रिया निम्न प्रकार करता है : ''पैदल चलने वाला कदम लेने के लिए अपनी टाँग की माँसपेशियों को सिकोड़ता है : वह अपने गंतव्य की ओर बढ़ने के लिए पैर उठाता है, वह अपने गंतव्य स्थान (डाकघर) में अपना पत्र डाक में डालने जा रहा है। वह दूसरे व्यक्ति को कोई सूचना देने के लिए पत्र भेज रहा है; आदि–आदि।''

इस तरह प्रत्येक निर्णय में लक्ष्य और उससे सम्बद्ध व्यवहार का चयन करना अंतर्निहित है; यह लक्ष्य यहीं समाप्त नहीं हो जाता। यह दूरस्थ लक्ष्य की ओर अग्रसर हो

सकता है, जब तक कि यह सापेक्षिक रूप से अंतिम लक्ष्य तक नहीं पहुँचता। जहाँ तक निर्णयों का अंतिम लक्ष्यों की ओर अग्रसर होने का संबंध है तो उन्हें 'मूल्य निर्णय' कहते हैं और जहाँ तक वे इस प्रकार के लक्ष्यों के क्रियान्वयन में शामिल होते हैं तो इन लक्ष्यों को 'तथ्यात्मक निर्णय' कहा जाएगा। उदाहरण के लिए, स्थानीय निकाय का बजट बनाने मं परिषद को यह निर्णय लेना होता है कि कितनी राशि किस मद को आबंटित की जानी चाहिए। यह प्राथमिकताओं पर निर्भर करता है। यह निर्णय की अधिक राशि सड़कों या उद्यानों को दी जाए या शिक्षा या स्वास्थ्य को, ये 'मूल्य–निर्णयों' से परस्पर संबद्ध है। एक बार प्राथमिकता निर्धारित हो जाती है तब क्रियान्वयन मुख्यतया वास्तविक निर्णयों पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए, सड़कों की लंबाई, सड़कों को जोड़ने वाले बिंदु, सड़क का प्रकार आदि वास्तविक निर्णयों से संबंधित निर्णय है। मूल्य और वास्तविक निर्णयों का अस्तित्व नहीं है। मूल्य और तथ्य केवल आधार और घटक हैं, जिन्हें परस्पर जोड़ा जाता है। हमारे समक्ष समस्याएँ मूल्य निर्णय या वास्तविक निर्णयों के रूप में नहीं आती है।

6.4.4. निर्णय निर्माण में तर्कसंगति : साइमन ने प्रमुख योगदान निर्णय–निर्माण और निर्णय–निर्माण में तर्कसंगत चयन के क्षेत्र में दिया। निर्णय–निर्माण एक जटिल प्रक्रिया है। जिसमें अनंत निर्णयों का नेटवर्क अंतःर्निहित होता है। सामान्य स्थिति में परिणाम का विश्लेषण करना अधिक सरल होता है और इसलिए अच्छा और तर्कसंगत निर्णय संभव हो पाता है। 'जटिल परिस्थितियों में, परिणाम का विश्लेषण कर पाना कठिन होता है और तर्कसंगति की क्षति होने की भी संभावना होती है। लेकिन साइमन का कहना है कि सभी निर्णय–निर्माण प्रक्रियाएँ तर्कसंगत रुचियों पर आधारित होती है। वह तर्कसंगति के ''उन मूल्यों की किसी प्रणाली के अनुसार वरीयता प्राप्त (Preference) व्यवहार विकल्पों से सम्बन्धित मुद्दों के रूप में परिभाषित करता है, जिससे व्यवहार के परिणामों का मूल्यांकन हो सके।'' इसके लिए आवश्यक है कि निर्णयकर्ता को संभावित क्रिया–विधि और उनके परिणामों की पूरी जानकारी होनी चाहिए। हालांकि वास्तविक जीवन में कुछ प्रतिबंधों के कारण सभी विकल्पों व परिणामों की पूर्ण जानकारी होना संभव नहीं है। ये प्रतिबंध या सीमाएँ या तो निर्णयकर्ता के सीमित लाभ के कारण हो सकते हैं या कभी–कभी किसी संगठन की संरचनात्मक व्यवस्था के कारण से होती है। कुछ सीमाएँ जो निर्णय लेने में पूर्ण तर्कसंगति का प्रयोग करने से रोकती हैं, वे निम्नलिखित है :

- निर्धारित समस्या के संभावित हलों की पूरी श्रेणी के संबंध में निर्णयकर्ता का सीमित ज्ञान या जागरूकता;
- प्रत्येक संभावित वैकल्पिक कार्यनीति के परिणामों के संबंध में निर्णयकर्ता की जानकारी सीमित होना;
- निर्णयकर्ता की सूचना/जानकारी अपर्याप्त होना;
- प्रत्येक संभावना और उसके परिणामों की पूरी तरह से जाँच करने के लिए उसके पास पर्याप्त समय न होना;
- उन भावी परिणामों के बारे में जानकारी का अभाव, जिनमें निर्णय–निर्माण करेगा;
- निर्णयकर्ता की आदतों, व्यक्तिगत धारणाओं और बौद्धिक क्षमता के कारण कुछ विकल्पों और रुचियों में प्रतिबंध/सीमाएँ;
- निर्णयों पर अनौपचारिक समूहों का प्रभाव, रूढ़िबद्धताएँ और व्यवहारात्मक मानदंड;
- संगठनात्मक कारक, जैसे औपचारिक संगठनों के नियम और क्रियाविधियाँ, इसके संचार मार्ग इत्यादि; और
- बाहरी दबाव।

साइमन ने निर्णय लेने में सम्मिलित तर्कसंगति के प्रकारों का भी वर्णन किया। साइमन द्वारा छह प्रकार की विभिन्न तर्कसंगतियाँ प्रस्तुत की गई, जिनमें विषयपरक, व्यक्तिपरक, जानकारी (अभिज्ञ), सुविचारित, संगठनात्मक और व्यक्तिगत तर्कसंगतियाँ सम्मिलित हैं। एक निर्णय होता है :

- वस्तुगत दृष्टि से तर्कसंगत (Objectively Rational) जहाँ नियत परिस्थिति में निर्धारित मूल्यों का अधिकतमीकरण करने के लिए सही व्यवहार है;
- व्यक्तिपरक दृष्टि से तर्कसंगत (Subjectively Rational) जहाँ निर्णय विषय के ज्ञान की अपेक्षा उपलब्धि को अधिकतम करते हैं;
- अभिज्ञातापूर्वक तर्कसंगत (Consciously Rational) जहाँ उद्देश्यों के लिए साधनों का समायोजन अभिज्ञता प्रक्रिया है;

- सुविचारित दृष्टि से तर्कसंगत (Deliberately Rational) है : हद तक उद्देश्यों के साधनों का समायोजन सुविचारित ढंग से किया गया है;
- संगठनात्मक दृष्टि से तर्कसंगत (Organisationaly Rational) यदि यह संगठनात्मक लक्ष्यों की ओर उन्मुख हो; और
- व्यक्तिगत रूप से तर्कसंगत (Personally Rational) यदि निर्णय व्यक्तिगत लक्ष्यों की ओर निदेशित किया गया हो।

तथापि, तर्कसंगत निर्णय–निर्माण प्रक्रिया का मूल आधार है जैसा कि साइमन ने कहा। उसने समग्र तर्कसंगति में निहित अयथार्थवादी (Unrealistic) मान्यताओं के कारण इस संकल्पना को भी अस्वीकार कर दिया। उनकी अस्वीकृति के कारण भी बताएं। सर्वप्रथम, पूर्ण तर्कसंगति इस धारणा पर आधारित है कि निर्णयकर्ता सर्वज्ञ (Omniscient) होते हैं और उन्हें सभी उपलब्ध विकल्पों तथा उनके परिणामों की जानकारी होती है। दूसरी यह धारणा की निर्णयकर्ताओं के पास असीमित अभिकलनात्मक (Computational) योग्यता होती है। तीसरी और अंतिम कारक, उनका मानना है कि निर्णयकर्ता से सभी संभावित परिणामों को सही क्रम में रखने की क्षमता होती है। साइमन का कहना है कि ये मान्यताएँ आधारभूत रूप में गलत है।

मानव व्यवहार न तो पूर्णतः तर्कसंगत है और न ही अतर्कसंगत। साइमन ने आगे कहा कि व्यवहार या ज्ञान संज्ञानात्मक सीमाओं से आबद्ध है और इसी से 'परिबद्ध तर्कसंगति' की संकल्पना उभरी। परिबद्ध तर्कसंगति के सिद्धांत की चर्चा करते हुए उन्होंने तुष्टिकरण 'satisficing' शब्द निर्मित किया जो अंग्रेजी के 'satisfication' और 'sufficing' शब्दों से व्युत्पन्न हुआ। इसलिए, निर्णय लेते समय, व्यक्ति सभी उपलब्ध विकल्पों की छानबीन (अन्वेषण) नहीं करता। बल्कि जो विकल्प निर्णय को इष्टतम करने की बताए उसकी स्तर या संतुष्टि स्तर को पूरा करता है, उसी पर विचार करता है। निर्णय लेने में व्यक्ति का वास्तविक जगत का व्यवहार 'संतोषजनक' निर्णय कहलाता है।

6.4.5. निर्णय निर्माण के मॉडल : निर्णय प्रक्रिया के कई मॉडल उपलब्ध हैं। मॉडलों का मूलभूत विचार (लक्ष्य) निर्णयकर्ताओं की तर्कसंगति की सीमा निर्धारित करता है। मॉडलों की श्रेणी पूर्ण तर्कसंगति से क्रमशः अर्थशास्त्री (आर्थिक व्यक्ति) और समाजशास्त्री (सामाजिक व्यक्ति) के पूर्ण अतर्कसंगति तक है (उमापति, 2010, op.cit.)। साइमन ने

प्रशासनिक व्यक्ति का एक ज्यादा यथार्थवादी मॉडल विकसित किया जो आर्थिक व्यक्ति के समानांतर है। प्रशासनिक स्थिति में किसी व्यक्ति का व्यवहार संगठन के कारकों द्वारा अनुकूलित होता है जैसे कि स्थिति (पद) की संभावित (अपेक्षित) भूमिका, बाध्यता और कर्त्तव्य (ड्यूटी), सार्वजनिक हित और नैतिक दायित्वों के लिए सरोकार। अतः आर्थिक व्यक्ति के विपरीत प्रशासनिक व्यक्ति के लिए, चयन का अधिकतमीकरण करना अव्यावहारिक है। एक आर्थिक व्यक्ति अधिकतमीकरण करता है अर्थात् वह सभी उपलब्ध विकल्पों में से सर्वोत्तम विकल्प चुनता है, जबकि प्रशासनिक व्यक्ति न तो सभी विकल्पों को सोच सकता है और न ही सभी संभव परिणामों का पूर्वानुमान लगा सकता है। इष्टतम समाधानों तक पहुँचने के लिए प्रयास करने की बजाए प्रशासनिक व्यक्ति 'पर्याप्त अच्छा' या 'किसी तरह से हुए' निर्णयों से संतुष्ट है (साइमन के शब्दों में तुष्टिकरण)। इस तरह आर्थिक व्यक्ति मॉडल के विपरीत जिसमें समाधानों को अधिकतमीकरण करने दिया जाता है, प्रशासनिक व्यक्ति मॉडल में कम संतोषजनक समाधानों पर विचार किया जाता है।

6.4.6. प्रभाव के मॉडल : निर्णय–निर्माण प्रक्रिया को प्रभावित करने के लिए प्रशासनिक संगठन ने अपनी विधियाँ व तरीके निर्मित किए। संगठन प्रचालन कर्मचारियों की व्यवहारात्मक चयन और निर्णय निर्माण स्वायत्तता को प्रतिबंधित करना चाहता है। ऐसे संगठनात्मक प्रभाव दो श्रेणियों के अंतर्गत आते हैं; अर्थात (1) प्रचालन कर्मचारियों में स्वयं दृष्टिकोणों, आदतों और मनःस्थिति को स्थापित करना जो उसे उन निर्णयों तक ले जा सके जो संगठन के लिए लाभप्रद है; और (2) संगठन में अन्यत्र दिए गए निर्णयों को प्रचालन कर्मचारी पर थोपना। प्रथम प्रकार में, कर्मचारियों में संगठनात्मक वफादारी, उसकी दक्षता और प्रशिक्षण के माध्यम में प्रभाव बनाया जाता है। दूसरी प्रकार में, प्रभाव प्राधिकार, सलाह या सूचना पर आधारित होता है। संगठनात्मक प्रभावों के इस सभी मॉडलों की नीचे चर्चा की गई है।

- **प्राधिकार –** संगठनात्मक संस्कृति प्राधिकार का मिथक इस तरह से बनता है कि अधीनस्थ कर्मचारी उच्च अधिकारियों से प्राप्त आदेशों का निर्वहन उन पर किसी प्रकार का सवाल उठाए बिना करते हैं। जैसा कि बर्नार्ड (Barnard) ने स्वीकार किया है कि प्राधिकार अधीनस्थों में निहित हैं, जो इसे स्वीकार करते

हैं न कि उच्च अधिकारियों में जो उनका प्रयोग कर रहे हैं। प्राधिकार का मिथक व्यवहार को काफी हद तक प्रभावित करने में सफल रहा।

- **संगठनात्मक निष्ठा** – किसी भी संगठन के सदस्यों में उस समूह से अपनी पहचान बनाने की प्रवृत्ति होती है। यह मानव स्वभाव की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। वे संगठन के हितों को ध्यान में रखकर निर्णय लेते हैं जिससे उनकी पहचान होती है। संगठन सदैव सदस्य की जानकारी का अच्छा उपयोग करता है। उपयोग की यही अवधारणा है जो उसे निष्ठावान बनाती है और उसे ऐसे निर्णय लेने योग्य बनाती है जो संगठन के उपयोग के अनुसार होंगे। इस प्रकार संगठनात्मक निष्ठाएँ व्यवहार संबंधी रुचि को संकुचित कर देती हैं और व्यवहार में समरूपता को बढ़ावा देती है जिससे सामूहिक कार्य करना संभव होता है। संगठन के प्रत्येक सदस्य को भी मूल्यों की सीमित श्रेणी प्राप्त होगी जो उत्तरदायित्व (जवाबदेही) सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है। परन्तु संगठनात्मक निष्ठा में समस्या यह है कि प्रत्येक व्यक्ति संगठन के संबंध में संकुचित दृष्टि रखता है और अधिक व्यापक संगठनात्मक हितों को नजरअंदाज करता है। साइमन की राय है कि चूँकि कोई भी व्यक्ति संगठन में जितनी अधिक ऊँचाई पर जाता है, उसे उतने ही अधिक व्यापक दृष्टिकोण की आवश्यकता होगी।
- **प्रभावशीलता का मानदंड –** प्राधिकार का प्रयोग और संगठनात्मक निष्ठाओं का विकास ऐसे महत्त्वपूर्ण साधन हैं, जिनसे व्यक्ति के मूल्य क्षेत्रों को संगठन द्वारा प्रभावित किया जाता है। परन्तु प्रत्येक निर्णय करने की प्रक्रिया में तथ्यपरक निर्णय भी होते हैं। वे दक्षता के मानदंड से प्रभावित होते हैं। दक्षता की अवधारणा से वांछित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए लघुतम पथ और सबसे सस्ते (कम लागत वाले) उपाय अंतर्निहित हैं। दक्षता मानदंड अधिकतर इस दृष्टि से तटस्थ होता है कि कौन–से लक्ष्य प्राप्त किए जाते हैं। किसी भी प्रशासनिक एजेंसी के सदस्यों के निर्णयों पर आदेश ''सक्षम या दक्ष बनो'' मुख्य संगठनात्मक प्रभाव है।

- **सलाह और सूचना –** संगठन में सूचना प्रवाह भी निर्णय करने की प्रक्रिया को मूर्तरूप देने में महत्वपूर्ण है। व्यक्ति को उपलब्ध सलाह और सूचना तथ्यपरक निर्णयों को करने में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। जो संगठन प्रभावकारी सूचना को बढ़ावा देने में सक्षम है, वह न केवल व्यवहार संबंधी चयन को अनुकूल कर सकता है, बल्कि निर्णय और कार्यवाही की एकरूपता भी सुनिश्चित करता है।
- **प्रशिक्षण –** प्रशिक्षण एक युक्ति या साधन है, जो संगठन के सदस्यों को संतोषजनक निर्णय लेने के लिए तैयार करता है। यह संगठन के डिजाइन और लक्ष्यों के अनुसार अपने विवेक के प्रयोग के तरीके में व्यक्ति को तैयार करता है। यह एक ऐसी भी युक्ति है जिसके माध्यम से सूचना और संगठन के लक्ष्य व्यक्ति तक पहुँचाए जाते हैं, ताकि वह संगठन में सही प्रकार की चयनों का चयन कर सके।

6.4.7. साइमन के निर्णय निर्माण के कार्यों का आलोचनात्मक मूल्यांकन : अब तक की चर्चा में यह जाना जा सकता है कि हर्बर्ट ए. साइमन का योगदान उल्लेखनीय है, विशेष रूप से निर्णय–निर्माण की प्रक्रिया, परिबद्ध तर्कसंगति का सिद्धांत या तुष्टिकरण की अवधारणा निर्मित करने के क्षेत्र में, हालांकि कुछ विद्वानों ने साइमन द्वारा व्यक्त किए गए विचारों की आलोचना की है। साइमन के सिद्धांतों/विचारों संबंधी कुछ आम आलोचनाएँ इस प्रकार है :–

- साइमन ने निर्णय–निर्माण या प्रक्रियाओं को ज्यादा महत्व दिया लेकिन प्रशासनिक निर्णय निर्माण और व्यवहार को प्रभावित करने वाले सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कारकों को नजरअंदाज किया।
- साइमन का अधिकांश कार्य मूल्यों की बजाए तथ्यात्मक निर्णयों पर केंद्रित है। हालांकि मूल्य क्षेत्रों का बाहिष्कार लोक प्रशासन के अध्ययन के यांत्रिक, दैनिक (नेमी) और कम महत्वपूर्ण (अनावश्यक) पहलुओं को सीमित करेगा।
- उसका तथ्य–आधारित प्रशासनिक सिद्धांत का विचार लोक प्रशासन की बजाए व्यापार प्रशासन के लिए ज्यादा संगम है।

- उसका निर्णय–निर्माण का विचार भी इतना अत्यधित अमूर्त है, अत्यधिक रूपाकारवादी (Formalistic) है और अत्यधिक प्रकार्यवादी है कि यह व्यक्तिगत अभिप्रेरणाओं और भावनाओं पर ध्यान दे पाने में विफल रहा है।
- जेम्स मैक केमी (James Mc Camy) का विचार है कि साइमन के विश्लेषण में व्यक्ति संगठन में अदृश्य (लुप्त) हो जाते है ओर भावनाएँ कारण के शब्दांडबर में विलीन हो जाती है।
- चेस्टर बर्नार्ड ने टिप्पणी की कि साइमन भौतिकी प्रस्तुत करने के प्रयास करने के साथ–साथ संसार की पहेली सुलझाने का प्रयास भी कर रहा था। बर्नार्ड ने चार पहलुओं पर उनकी आलोचना भी की है : साइमन द्वारा प्रयुक्त तर्कसंगति और सक्षम शब्दों में यह असंगति दृष्टिगत होती है, अधिकांश निर्णयों में अत्यधिक मात्रा में निहित अनिश्चितता को ध्यान में रखा गया, संगठन ने संचार प्रक्रियाओं की ओर पर्याप्त ध्यान केंद्रित नहीं किया गया और राजनैतिक रूप से तटस्थ रवैये को नहीं लिया गया।
- साइमन के निर्णय–निर्माण संबंधी अध्ययन में तथ्यों और मूल्यों को समाविष्ट किया गया है और इनके बीच तर्कसंगत प्रत्यक्षवाद भिन्नता का प्रयोग किया गया है। उनकी दृष्टिकोण पर कुख्यात राजनीतिक–प्रशासन द्विभाजन का नए वेष (रूप) में पुनः जीवित होने का आक्षेप लगाया गया।
- नार्टन ई–लॉन्ग (Norton E.Long) ने साइमन द्वारा वर्णित प्रशासन के मूल्य–रहित (मुक्त) विज्ञान की आलोचना की, जो कि नए शब्द–विन्यास (शब्दाडंबर) में नीति प्रशासन द्विभाजन को पुनर्जीवित करने का अनभिप्रेत और तार्किक रूप से बेबुनियाद (निराधार) परिणाम हो सकता है।
- सेल्जनिक (Selznick) का तर्क है कि तथ्य और मूल्य के मौलिक पृथक्करण को प्रायः तथ्य कथन और वरीयता कथनों के बीच तार्किक भिन्नता से पहचाना जाता है जो केवल साधनों और लक्ष्यों के विच्छेद को प्रोत्साहित करता है (बढ़ावा देता है)।

- क्रिस आरगाइरिस की राय में साइमन तर्कसंगति पर बल देते हुए निर्णय करने में सहज बुद्धि, परंपरा और विश्वास की भूमिका को पहचानने में विफल रहा। साइमन का सिद्धांत यथार्थपूर्ण स्थिति पर केन्द्रित था।

6.5. अपनी प्रगति जांचे (Check your progress)

नीचे कुछ प्रश्न दिए गए हैं उनके उत्तर देने का प्रयास करें :–

(v) साईमन को निर्णय–निर्माण कार्यों के लिए नोबल पुरस्कार कब दिया गया?

(vi) साईमन ने प्रशासनिक व्यवहार नामक पुस्तक कब लिखी?

(vii) साईमन के अनुसार निर्णय निर्माण में कौन से महत्वपूर्ण कारक हैं?

(viii) POSDCORB की अवधारणा किसके द्वारा दी गई?

(ix) PODCORB की अवधारणा किससे सम्बन्धित है?

6.6. सारांश (Summary)

भले ही कुछ विद्वानों ने हर्बर्ट ए. साइमन के कार्यों की आलोचना की है, किन्तु प्रशासन के अध्ययन या निर्णय–निर्माण प्रक्रियाओं में साइमन का योगदान प्रमुख उद्भवकारी घटना है, इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता। इस इकाई में आपको साइमन द्वारा वर्णित विभिन्न अवधारणाओं से परिचित कराया गया। साइमन द्वार क्लासिकी सिद्धांतों की आलोचना और संगठनात्मक सिद्धांत को 'मात्र मुहावरे कहना, व प्रशासन को नई सोच से देखने की जरूरत तय करना, इस सभी की चर्चा की गई। निर्णय लेने में तथ्य और मूल्य क्षेत्र और निर्णयों तक पहुंचने में चयन और व्यवहार की भूमिका ने निर्णय प्रक्रिया की चर्चा को पुनः दिशा प्रदान की जिससे तर्कसंगत चयन सिद्धांत और परिबद्ध तर्कसंगति सिद्धांत का विकास संभव हो पाया। निर्णय–निर्माण दृष्टिकोणों परिबद्ध तर्कसंगति की अवधारणा, तुष्टिकरण निर्णय और प्रशासनिक व्यक्ति के मॉडल में साइमन के योगदान ने न केवल उन पैटर्नों को समझने में मदद की जिनमें व्यक्ति निर्णय लेता है, बल्कि संगठन की कार्यशीलता किस प्रकार निर्णय प्रक्रिया के आधार पर निर्धारित होती है, इस संबंध में पाठकों ने अध्ययन क्षेत्रों को व्यापक व विस्तृत किया है। इस तरह, इकाई में साइमन द्वारा अध्ययन की गई प्रमुख अवधारणाओं की एक झलक प्रस्तुत की गयी है।

6.7. सूचक शब्द (Key Words)

परिबद्ध तर्कसंगति, तथ्य, मूल्य, POCCC

परिबद्ध तर्कसंगति – तथ्यों और परियताओं की रूचि उपलब्ध होने पर यह कार्य करते हैं। मानव व्यवहार न तो पूर्णतः तर्कसंगत है न ही पूरी तरह अतर्कसंगत।

तथ्य – यह वास्तविकता का कथन है जो उन कार्यों को दर्शाता है, जिन्हें अनुभव द्वारा जाँचा जा सकता है।

मूल्य – यह वरियताओं की अभिव्यक्ति है जिसे व्यक्ति परक रूप से दृढ़तापूर्वक नहीं कहा जा सकता।

POCCC – इससे अभिप्राय है योजना, संगठन, आवेश, समन्वय और नियन्त्रण।

6.8 स्वयं मूल्यांकन हेतु प्रश्न (Self Assessment Questions) :-

1. कलासिकी सिद्धान्त पर साईमन के विचार स्पष्ट कीजिए।
2. निर्णय निर्माण में सम्मिलित क्रियाकलापों का वर्णन कीजिए।
3. निर्णय निर्माण में तथ्य और मूल्यों के बीच अंतर बताइए।
4. निर्णय निर्माण में तर्कसंगति तार्किकता के महत्व का वर्णन कीजिए।

6.9. अपनी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर (Answer for check your progress):-

5. 1970 में।
6. 1974 में।
7. तथ्य एवं मूल्य।
8. लूथर गुलिक ने
9. प्रशासनिक कार्यों से।

6.10. सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference):-

1. Public Administration, Mcgraw Hill : Laxmi Kant. M
2. New Horizons of Public Administration; Mohit Bhattacharya; Jawahar Publisher & Distribution.
3. Indian Administration; S.R. Maheshwari, Orient Black Swan.
4. Public Administration Theory and Practice; Hoshiar Singh and Pardeep Sachdeva; Pearson.

5. प्रशासनिक चिंतक; प्रसाद एण्ड प्रसाद सत्यनारायण; जवाहर पब्लिकेशन एण्ड डिस्ट्रीब्यूशन।

Subject : लोक प्रशासन	
Course Code :	Author :
Lesson No. : **7**	Vetter :
लोक चयन उपागम	

अध्याय – 7 लोक चयन उपागम

7.1 अधिगम उद्देश्य **(Learning Objectives)**

7.2. प्रस्तावना **(Introduction)**

7.3. अध्ययन के मुख्य बिन्दु **(Main Point of Text)**

- **7.3.1** लोक चयन उपागम का अर्थ
- **7.3.2.** लोक चयन उपागम की परिभाषा
- **7.3.3.** लोक चयन उपागम की अवधारणा

7.4. अध्याय के आगे का प्रमुख भाग **(Further Main Body of Text)**

- **7.4.1.** लोक चयन उपागम के प्रमुख सुझाव
- **7.4.2.** लोक चयन उपागम की प्रमुख विशेषताएं
- **7.4.3.** लोक चयन उपागम की विचारधारा
- **7.4.4.** लोक चयन उपागम के प्रस्तावकों के प्रभावशाली कार्यों का परीक्षण

7.5. अपनी प्रगति जांचे **(Check your progress)**

7.6. सारांश **(Summary)**

7.7. सूचक शब्द **(Key Words)**

7.8. स्वयं मूल्यांकन हेतु प्रश्न **(Self Assignment Questions)**

7.9. अपनी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर **(Answer for Check your progress)**

7.10. सन्दर्भ ग्रन्थ **(Reference)**

7.1 अधिगम उद्देश्य (Learning Objectives)

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप निम्न विषयों को समझ पाओगे :–

- लोक चयन उपागम की अवधारणा की व्याख्या
- लोक चयन उपागम के प्रमुख सुझाव
- लोक चयन उपागम की विशेषताओं की व्याख्या
- लोक चयन उपागम के विभिन्न विचारधाराओं का योगदान
- लोक चयन उपागम के प्रस्तावकों के प्रभावशाली कार्यों का परीक्षण
- विकास प्रशासन के मॉडल

7.2. प्रस्तावना (Introduction)

1960 व 1970 के दशकों में एक ऐसा समय उदित हुआ, जब नौकरशाही संचालित शासन तथा राज्य की भूमिका की आलोचना इस आधार पर की जाती थी कि विविध भूमिकाओं में राज्य सक्षम नहीं है। अत्याधिक सरकारी प्रक्रिया की स्वाभाविक प्रवृति को जांचने के लिए एवं सरकार की गतिविधियों को रोकने के लिए अनेक प्रकार के सुझाव दिए गए हैं। इस के अंतर्गत सरकार के विकास को रोकने के लिए संवैधानिक सुधार, राजनीतिक शक्ति का विकेन्द्रीकरण आदि शामिल है। ऐसा ही एक तरीका लोक चयन उपागम है, जिसका लक्ष्य राजनीतिक प्रक्रिया, संस्थाओं व लोक नीति के अध्ययन में अर्थव्यवस्था को लागू करना है, जिससे कार्यक्षमता को बढ़ावा मिल सके।

इस इकाई में लोक चयन उपागम के दृष्टिकोण की जानकारी प्राप्त होगी, जिसने 1970 के दशक में लोक प्रशासन के विषय क्षेत्र में काफी महत्वपूर्ण स्थान हासिल किया है। लोक चयन उपागम का उदय लोक प्रशासन विषय के विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस इकाई के आगामी भागों में लोक चयन उपागम के सिद्धांतों की व्याख्या की जाएगी एवं मुख्य विशेषताओं को प्रमुखता दी जाएगी। प्रादिधिकी–व्यक्तिवाद, तर्कसंगत चयन, संस्थागत बहुलवाद जैसे लोक चयन उपागम के कुछ मुख्य सुझावों की चर्चा की जाएगी। इसमें आगे लोक चयन उपागम के विभिन्न सम्प्रदायों (विचारधाराओं) का वर्णन किया जाएगा। इस उपागम से सम्बन्धित अनेक प्रतिपादकों द्वारा दिए गए लोक चयन सिद्धांत के संदर्भ में राज्य व नौकरशाही की धारणा के प्रभावों की चर्चा की जाएगी। लोक चयन उपागम पर अन्य विद्वानों के आलोचनात्मक व्याख्यानों को भी इसमें शामिल किया गया है।

7.3. अध्ययन के मुख्य बिन्दु (Main Point of Text)

7.3.1. लोक चयन उपागम का अर्थ : लोक चयन उपागम का प्रथम बार उपयोग साठ के दशक के अंत में किया गया था एवं 70 के दशक में लोक प्रशासन के एक विषय के रूप में इसे महत्वपूर्ण स्थान मिला। विसेंट ओस्ट्रॅम (Vincent Ostrom), जो कि लोक चयन उपागम के विद्वान है एवं इस उपागम को लोक प्रशासन का उपयुक्त विषय मानते हैं, उनके अनुसार लोक प्रशासन के विद्वानों को पारम्परिक नौकरशाही उपागम से लोक चयन उपागम की ओर जाना चाहिए।

लोक चयन का वास्तविकता में राजनीतिक गतिविधियों, संस्थाओं व लोक नीति को समझने के लिए अर्थशास्त्र प्रवधि का प्रयोग है। इसी से केन्द्रबिन्दु दक्षता से तार्किकता की ओर हो जाता है। यह अनुमान डेनिस मयूलर (Dennis Mueller) के शब्दों से और स्पष्ट होता है, जो लोक चयन उपागम को परिभाषित करते हैं, ''निर्णय निर्माण में गौर बाजार को आर्थिक अध्ययन या राजनीतिक विज्ञान में सामान्य अर्थशास्त्र को लागू करना लोक चयन है। लोक चयन उपागम का विषय क्षेत्र राजनीति विज्ञान के ही समान है। राज्य का सिद्धांत, निर्वाचन नियम, निर्वाचकों का व्यवहार, दलिय राजनीति, नौकरशाही आदि। लोक चयन की विधियाँ अर्थशास्त्र के ही समान है (Mueller, 1979)। उपागम, आगे नौकरशाह या अधिकारी के विशिष्ट व्यवहार का अनुमानों व सैद्धांतिक ढाँचे के आधार पर चर्चा करता है।

मूलतः लोक चयन उपागम लोकतांत्रिक प्रशासनिक व्यवस्था का समर्थन करता है। अर्थात् लोकतांत्रिक प्रशासनिक व्यवस्था का उद्देश्य लोगों को वो उपलब्ध कराना है, जो उनहें चाहिए। लोक चयन उपागम उस प्रक्रिया का अध्ययन करता है, जो लोग चयन व वरीयता से स्पष्ट करते हैं तथा उपागम लोगों या नागरिकों के चयन को विस्तारित करने पर बल देता है, लोकप्रिय चयन के उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए सरकार के कार्य नागरिकों के हितों व मूल्यों से मेल खाते हुए होने चाहिए।

7.3.2. लोक चयन उपागम की परिभाषा : लोक चयन के प्रसार के लिए सरकार के कार्यों की जब चर्चा होती है तब उपागम दो मान्यताओं को स्थापित करता है : (अ) व्यक्ति पर्याप्त सूचना व वरीयता के क्रम के साथ विवेकपूर्ण व्यवहार करता है, तथा (ब) व्यक्ति उपयोगिता का अधिकतम लाभ उठाने वाले होते हैं। इस उपागम की मुख्य प्राक्कल्पना यह है कि हर व्यक्ति स्वहित से प्रेरित वृद्धि पर ध्यान केन्द्रित करता है। जब इस मान्यता को सरकार व नौकरशाही की भूमिका के रूप में प्रयुक्त किया जाता है तो लोक चयन उपागम

महत्वपूर्ण अनुमान लगाता है। राजनीतिज्ञ व अधिकारी भलाई के आधार पर कार्य नहीं करते या फिर उनके दिमाग में लोक सेवा के भाव होते हैं। बल्कि एक व्यक्ति, विवेकपूर्ण विचारक के रूप में वे सर्वप्रथम स्वहित का सोचते हैं व स्वयं के हितों में बढ़ोतरी का प्रयास करते हैं। उदाहरण के लिए राजनीतिज्ञ ऐसी गतिविधियों के बारे में सोचते हैं, जो उन्हें पुनः निर्वाचित होने या चुनाव के लिए पार्टी टिकट जीतने में सहायता कर सके। ठीक इसी तरह सब अधिकारी के लिए सेवाकाल में पदोन्नति और पद में वृद्धि की सोच उपस्थित होती है, जब वह कार्य को पूर्ण करने की प्रक्रिया में उपस्थित हो। अतः लोक सेवक (अधिकारी) स्वयं की प्रशंसा करने वाले नौकरशाह (अधिकारी) है, जो केवल उन्हीं गतिविधियों को बढ़ावा देते हैं, जो उनके प्रभार में हों, जबकि राजनेता वोट चाहने वाले राजनीतिज्ञ होते हैं, जो सत्ता में बने रहने के लिए अधिक से अधिक वोट प्राप्त करना चाहते हैं। यह उपागम ऐसा मानता है कि व्यक्ति अहंवादी आत्महित का प्रश्रय देता है, तथा वे कम कीमत के निर्णयों से अधिकतम व्यक्तिगत लाभ लेते हैं।

7.3.3. लोक चयन उपागम की अवधारणा : उपागम का ऐसा विश्वास है कि विभिन्न प्रकार के संगठनों के द्वारा वस्तु एवं सेवायें तथा इन्हीं संगठनों का समन्वय बहुसंगठनों द्वारा किया जा सकता है। इसी प्रकार से लोक चयन विचारधारा लोक प्रशासन को राजनीति के अंतर्गत देखता है। अतः लोक चयन उपागम राज्य को घटाने व बाजार की वृद्धि का सिद्धांत है। इस का न्यायोचित दृष्टिकोण यह है कि सरकार का निर्णय निर्माण सामूहिक हित पर आधारित है, न कि नागरिकों के व्यक्तिगत हितों पर।

7.4. अध्याय के आगे का मुख्य भाग (Further Main Body of Text)

7.4.1. लोक चयन उपागम के प्रमुख सुझाव : लोक चयन प्रणाली के विश्लेषण का प्राविधिकी आधार निम्नलिखित है –

- लोक चयन उपागम की प्राक्कल्पना विवेकपूर्ण धारणा है, तथा ये राजनीतिक कर्ताओं को सहज रूप से विवेकी मानते हैं।
- लोक चयन उपागम का संचालन प्राविधिकी व्यक्तिवादी संरचना के अंतर्गत होता है।
- लोक चयन उपाग की पारिभाषिक विशेषता राजनीति का विनिमय है।

तार्किकता (विवेकपूर्ण) धारणा – जैसा कि पूर्व में चर्चा की गई है, मूल विचार यह है कि लोग अवरोधों के बावजूद कार्य को सर्वोच्चता से करते हैं। ऐसा माना जाता है कि लोग विकल्पों को भी वरीयता देते हैं और सबसे उचित विकल्प को चुनते भी हैं व अपने चुनाव में अटल रहते हैं। राजनीति में इस तर्क को लागू करते समय लोक चयन सिद्धांतशास्त्री का प्रमुख आशय यह है कि राजनीति का मूल्यांकन लोकहित के दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि व्यक्तिगत अधिकतम लाभ प्राप्ति से करना चाहिए। राजनीतिक परिक्षेत्र में सभी सहभागी चाहे वो राजनीतिज्ञ, नौकरशाह, मतदाता या जन भागीदार हों, अपने अधिकतम लाभ प्राप्ति के लिए प्रयासरत रहते हैं।

प्राविधिकी या व्यवस्थित व्यक्तिवाद शब्द का प्रयोग जोसेफ शूम्पीटर द्वारा प्रथम बार किया गया। यह समाज को एक सावयव के रूप में नहीं मानता एवं इस संपूर्ण उपागम को भ्रामक मानता है। लोक चयन सिद्धांत का तर्क है कि सामूहिक समूह या संस्था का अध्ययन करते समय, व्यक्ति को विश्लेषण की इकाई होना चाहिए, निर्णय निर्माण की आधार इकाई व जिनके लिए निर्णय लिया हो, दोनों समूह, संगठन समाज, सिर्फ व्यक्तियों का जोड़ होते हैं। बाकी आगम समूह निर्णय निर्माण की बात करते हैं पर लोक चयन आगम समूह निर्णय निर्माण को मान्यता नहीं देता।

राजनीतिक एक विनिमय के रूप में – लोक चयन उपागम मानता है कि कुछ साधनों की स्वीकृति का प्रारम्भ व्यक्तियों के सोदेबाजी व विनिमय का परिणाम है। हालांकि विनिमय राजनीतिक या व्यक्तिगत क्षेत्र में होता है न कि बाजार क्षेत्र में। अर्थात् विनिमय का तात्पर्य नारंगी (संतरे) के बदले सेब नहीं बल्कि विनिमय राजनीतिक क्षेत्र में कर्ताओं के मध्य विभिन्न पारस्परिक लाभों के लिए होता है। उदाहरण के लिए बड़े कार्पोरेट व बड़े व्यवसायिक घरानों द्वारा राजनीतिक दलों को चुनाव खर्च के लिए दिए जाने वाले धन की एवज में राजनीतिक दलों द्वारा सत्ता हासिल करने के पश्चात् कार्पोरेट एजेंसियों के लिए मदद की चाह होती है। ऐसे लेने देने में हर प्रतिभागी लाभ की आकांक्षा रखता है और इसी तारतम्य में स्वयं के संसाधनों के विनिमय की आवश्कयता को कम कर देता है। राजनीति एक विनिमय मॉडल (प्रतिमान) के प्रस्तावक राज्य का संपूर्ण ध्यान प्रक्रिया में होना चाहिए न कि परिणाम पर।

इस सुझावों में वस्तु व सेवा के वितरण में ''संस्थात्मक बहुलावाद'' एक और नया सुझाव है। अर्थात् उपागम के अनुसार, विभिन्न वस्तु व सेवाओं के लिए अनेक संस्थात्मक

व्यवस्थाओं की आवश्यकता होती है। अतः यह उपागम प्रभावशाली नौकरशाही द्वारा निर्मित संस्थापक कमजोरियों से दूर रहने पर बल देता है। जब अधिक संस्थाएं होती हैं तब लोगों के पास अधिक विकल्प होते हैं, जो उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को पूरा करने में मददगार साबित होते हैं। यह राज्य की एकमात्र सत्ता को भी कम करता है। उदाहरणस्वरूप, भारतीय रेलवे जहाँ राज्य ही एकमात्र कर्ता है व जनता के पास और कोई विकल्प नहीं है।

7.4.2. लोक चयन उपागम की प्रमुख विशेषताएं : पूर्व की चर्चाओं से यह स्पष्ट होता है कि लोक चयन उपागम का उद्देश्य व्यक्तियों को अधिकतम विकल्प उपलब्ध कराना है एवं यह सरकार को अर्द्धव्यापारिक या संस्थात्मक विकल्प के बहुलवाद को उपलब्ध कराने के लिए प्रोत्साहित करना है। यह प्रतियोगी बाजार को बढ़ावा देता है, इस तर्क के साथ कि अगर नौकरशाही सेवा वितरण पर एकाधिकार रखे तो इसका नतीजा अक्षमता व आवश्यकता से अधिक आपूर्ति होगा। विशाल राज्य के प्रबन्धक के एकाधिकार को समाप्त कर चयन भागीदारी की शुरूआत से इस उपागम ने राज्य व नागरिकों के मध्य एक नए शक्ति समीकरण को परिभाषित किया है। इस उपागम के आधारभूत सुझावों के आधार पर लोक चयन उपागम की विशेषताएं निम्नलिखित हैं :

- यह नौकरशाह विरोधी उपागम है। यह नौकरशाही को एक बुराई समझता है, क्योंकि यह लोक हितों की कीमत पर स्वयं के हितों को महत्व देता है।
- यह प्रशासन के नौकरशाही मॉडल का आलोचक है। इसका अनुमान है कि स्वार्थी नौकरशाह एवं वोट की चाह वाले राजनीतिज्ञ, वस्तु व सेवा का उपयोग जन हित की जगह स्वयं के लिए करते हैं।
- यह जनता की वस्तु व सेवा के प्रावधानों के लिए संस्थात्मक बहुलवाद को बढ़ावा देता है।
- उपभोक्ता की प्राथमिकता के आधार पर सरकार व लोक संस्थाओं के बहुमत का समर्थन होता है।
- यह लोक सेवा वितरण की समस्याओं के लिए आर्थिक तर्क लागू करता है।
- यह विविध लोकतांत्रिक निर्णय निर्माण केन्द्रों, विकेन्द्रीकरण तथा प्रशासन में लोकप्रिय भागीदारी का समर्थन करता है। इसका सुझाव इस आधार पर

किया गया कि यह सरकार एजेन्सियों के मध्य प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देने का अवसर उत्पन्न करता है एवं इस प्रक्रिया में नागरिकों की व्यक्तिगत विकल्प में बढ़ोतरी होती है।

- लोक सेवा के वितरण के दौरान प्रतियोगिता को प्रोत्साहित करता है।
- यह अपव्यय को रोकने के लिए निजीकरण या संविदा पर बल देता है।
- प्रतियोगिता के मूल्य पर व प्रतियोगिता के आधार पर लोक सेवा के विकल्पों की उपलब्धता के लिए यह सूचनाओं के विस्तार को प्रोत्साहित करता है, ताकि लोगों को लाभ मिल सके।

लोक प्रशासन के राजनीति के कार्यक्षेत्र में अंतर्गत होने के फलस्वरूप लोक चयन उपागम लोक प्रशासन में राजनैतिक पहुँच का समर्थन करता है। सामान्य प्रशासन या सार्वजनिक उपक्रमों का निजीकरण दोनों ही में, पिछले दो से तीन दशकों में, ये देखा गया है कि लोक चयन उपागम जैसे उपागमों के प्रभाव के कारण निजी क्षेत्र में विस्तार हुआ है तथा राज्य क्षेत्र संकुचित हो गया है। सार्वजनिक क्षेत्रों में निजी कार्य प्रणाली का उपयोग बहुतायत में हो रहा है व इसमें लोक चयन उपागम की महत्वपूर्ण भूमिका है।

7.4.3. लोक चयन उपागम की विचारधारा : विभिन्न समय में रोचेस्टर, शिकागो, वर्जिनिया आदि स्थानों में लोक चयन से सम्बन्धित विचारों का उद्‌भव हुआ। लोक चयन से सम्बन्धित कुछ विचारों का वर्णन किया जा रहा है, जो पूर्व के वर्णनों को कुछ हद तक आच्छादित कर रहे है :

1. **लोक चयन की रोचेस्टर विचारधारा –** रोचेस्टर में लोक चयन के विचार का उदय हुआ, उसे लोक चयन की रोचेस्टर विचारधारा कहा गया है। इस उपागम के अनुसार, व्यक्ति के स्थान पर समूह का अध्ययन अर्थहीन है। इस के अनुसार, लोक चयन की जगह जनहित दृष्टिकोण का उपयोग करने के कारण राजनीति अध्ययन भ्रमित है। रोचेस्टर विचारधारा के प्रमुख प्रतिपादक विलियम, एच राइकर एवं पीटर ओरडेषोक है।

2. **लोक चयन की शिकागो विचारधारा –** अमरीका के शिकागो विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्रियों के कार्यों से इस विचारधारा का जन्म हुआ। इस समूह के द्वारा प्रतिपादित लोक चयन उपागम के विचार का आधार राजनीति व सरकारी गतिविधियां है। शिकागो विचारधारा का कार्य मुख्यतः विनिमय से सम्बन्धित है। इस संदर्भ में पूर्व के योगदान,

एकाधिपत्य को नियंत्रित करता था, जिससे की दक्षता में वृद्धि हो व मूल्य में कमी हो। स्टीगलर (Stigler, 1971) ने विनियमन का एक अलग ही सिद्धांत दिया, जिसमें जो लोग राज्य द्वारा नियंत्रित होते हैं वे स्वयं ही विनिमय की प्रक्रिया का उपयोग करते हैं व उपभोक्ता की कीमत पर स्वयं सारे लाभ लेते हैं। बड़े उद्योग व्यापार या बड़े किसान विनिमय के सब्सिडी लेकर लाभ लेते हैं तथा स्वयं की प्रतियोगिता व कीमत नियंत्रण से स्वयं को बचाते हैं जो कि बड़े भाग का आश्वासन देते हैं। शिकागो विचारधारा के प्रमुख प्रतिपादक मिल्टन फ्रेडमैन व राबर्ट ल्यूकास हैं।

3. **लोक चयन की वर्जिनिया विचारधारा –** इस विचारधारा के बुद्धिजीवी नेता जेम्स बुकानन तथा गॉर्डन टुलॉक हैं, जिन्होंने राजनीतिक व नैतिक दर्शन को शामिल किया गया है। इस विचारधारा ने राजनीतिक प्रक्रिया के विश्लेषण के लिए राजनीति एकविनिमय सिद्धांत को शामिल किया है। इस विचारधारा के अनुसार, बुद्धिपरक चयन पर विश्वास करते हुए यह इंगित किया कि व्यक्तिगत स्तर पर उपयोगिता की अधिकता ठीक है, परन्तु वृहद् सामाजिक स्तर पर यह विचारहीन है, क्योंकि समाज कोई तत्व नहीं है, जो कि वृद्धि कर सके। यह उपागम यद्यपि राजनीति विज्ञान के अध्ययन में अर्थशास्त्र के उपयोग की वकालत करता है, फिर भी इन दोनों में अंतर को भी यह बताता है। इसके अनुसार, बाजार में उपभोक्ता के रूप में व्यक्ति का स्वयं का विकल्प, राजनीतिक निर्वाचन प्रक्रिया में लोगों द्वारा किए गए सामूहिक चयन से अलग है। आगे बुकानन ने व्यक्तिगत चयन व सामूहिक चयन के मध्य अंतर को बताया है।

व्यक्तिगत चयन	**सामूहिक चयन**
बाजार में व्यक्ति स्वयं के लिए चयन करता है तथा स्वयं के चयन से प्रासंगित निष्कर्ष निकालता है।	राजनीतिक चुनाव प्रक्रिया में व्यक्ति का प्रासंगिक निष्कर्ष लोगों के चयन से निर्धारित होता है। यहाँ बहुत अनिश्चितता रहती है।
बाजार में व्यक्ति को ऐसा प्रतीत होता है कि कीमत, बिक्री तथा व्यापारी द्वारा लगाए गए दाम पर व्यक्ति का कोई नियंत्रण नहीं होता। व्यक्ति संगठन या बाजार में विकल्प को प्रभावित नहीं कर सकता है। बाजार व्यक्ति के लिए औपचारिक है।	सामूहिक चयन में मतदाता को यह पता होता है, मुख्य सामाजिक परिणाम में वह निर्णायक भूमिका में होगा। अतः व्यक्ति विभिन्न मूल्यों व व्यक्तिपरक वरीयता मापन का उपयोग चयन निर्धारण में करता है।
बाजार में चूंकि व्यक्ति द्वारा लिए निर्णय का प्रभाव व्यक्ति पर पड़ता है। अतः वह	क्योंकि चुनाव के द्वारा निर्णय निर्माण सब लोगों के चयन पर आधारित है,

स्वयं को उत्तरदायी मानता है।	उत्तरदायित्व का अहसास विलुप्त रहता है। अतः कभी कभी व्यक्ति मत देने भी नहीं जाता है।
बाजार में उपभोक्ता को कई विकल्प उपलब्ध कराए जाते हैं, जिससे वो अपना चयन कर सके तथा बजट के आधार पर व्यक्ति अपने विकल्पों का आर्डर दे सकता है और वस्तु व सेवा के मिश्रण को खरीद सकता है।	राजनैतिक वातावरण में व्यक्ति को उपलब्ध कराए गए चयन परस्पर उत्कृष्ट होते हैं। साथ ही मतदाता को एक या अन्य विकल्पों में से चुनाव करना होता है।
हर एक टुकड़ा जो कि व्यक्ति द्वारा उपयोग में लाया गया है व किसी वस्तु को खरीदने में उपयुक्त हुआ है तथा कुछ भी व्यर्थ नहीं जाता है।	राजनैतिक वातावरण में मत शायद उसके लिए पड़े हैं, जो प्रत्याशी हार गया। सभी व्यक्ति जो हारने वाले को वोट देते वे अल्पसंख्यक हो जाते हैं, जिनकी प्राथमिकताएं राजनीतिक एजेण्डा तैयार नहीं करती, अतः व्यक्ति की मजबूरी है अपनी प्राथमिकताओं के विपरीत नतीजों को स्वीकारना। ऐसी जोरजबरदस्ती बाजार में उपस्थित नहीं होती है।
बाजार में असमान क्रयशक्ति तथा आय वितरण होता है।	राजनीतिक परिक्षेत्र में मतों का समान विभाजन होता है।

सम्पूर्ण रूप से वर्जिनिया विचारधारा ने राज्य के कल्याणकारी प्रतिमान को अस्वीकार किया तथा यह माना कि सार्वजनिक क्षेत्र नीति निर्माण व क्रियान्वयन में व्यवस्था की नाकामी को झेल रहे हैं।

7.4.4. लोक चयन उपागम के प्रस्तावकों के प्रभावशाली कार्यों का परीक्षण : कई विद्वानों ने लोक चयन के सिद्धांत में योगदान दिया है तथा इनमें गॉर्डन टुलॉक, विन्सेन्ट ऑस्ट्राम, विलियम निसकानन, जेम्स बुकानन तथा पेट्रिक डनलेवी प्रमुख है। इन समर्थकों ने स्वयं के हित की अवधारणा पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है एवं लोकहित, लोक चेतना व लोक सेवा की अवधारणा पर संज्ञान नहीं लिया। उनका मुख्य सुझाव सरकार व नौकरशाही में कमी एवं लचीली व्यवस्था व प्रेरणा के निर्माण से बाजार व्यवस्था पर विश्वास की स्थापना करना रहा है। उन्होंने सुझावों द्वारा राज्य की भूमिका में कमी, उनके हस्तक्षेप को न्यूनतम कार्यो तक सीमित करने पर बल दिया है। समर्थकों ने बाजार को नौकरशाही की अपेक्षा अधिक उत्तरदायी समझा एवं निजीकरण, बाह्य स्त्रोत से सेवाएं प्राप्त करने के पहलुओं को अधिक महत्व दिया है।

इन समर्थकों ने प्रशासनिक स्वार्थपरता का सिद्धांत निर्मित किया व सुझाव दिया कि एक नौकरशाह की विशेषताएं हैं स्वयं की उन्नति, संसाधनों से काम निकालना व अपना हित देखना, जो अधिकतर लोक हित के विपरीत होते हैं। लोकद चयन उपागम के प्रमुख तर्कों के अलावा कुछ अन्य अवधारणाएं थी, जो कि इन विद्वानों के कार्यों में उभर कर आया, जिनमें से कुछ की चर्चा इस इकाई में की गई है।

1. **नट विकसेल व लोक चयन उपागम** – लोक चयन उपागम पर वक्तव्य देने वाले प्रमुख नट विकसेल है, जिन्होंने 1896 में इस सिद्धांत पर अत्यंत प्रभावशाली कार्य किया है। इस कार्य को बुकानन ने 1949 में पुनः स्थापित किया था। विकसेल प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने यह सुझाव दिया कि सामूहिक निर्णय या सार्वजनिक क्षेत्र निर्णय का उदय राजनीतिक प्रक्रिया से हुआ है न कि परोपकारी राजनीतिज्ञ की बुद्धि से, जो कि लोक हित को ध्यान में रख कर कार्य कर रहा हो। अपने शोध निबंध में उन्होंने अन्याय व अक्षमता के प्रति अपनी चिंता जाहिर की, जो कि संसदीय विधान सभाओं के अनियंत्रित बहुमत शासन से उदित हुआ है। उनके अनुसार, बहुमत का शासन नागरिकों या बड़ी संख्या के कर दाताओं पर अधिक कर लागू कर देते हैं। उन्होंने प्रश्न किया कि क्यों उन भेदभाव सहने वाले अल्पसंख्यकों द्वारा लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था को समर्थन दिया जाए। उनके अनुसार, इसका समाधान यह है कि मत देने वाले समूह के सभी लोगों का सर्वसम्मति से सहमति सामूहिक प्रक्रिया का क्रियान्वयन, जिससे कि यह आश्वासन हो सके कि सभी लोगों को पूरा लाभ मिलेगा।

2. **लोक चयन व गोर्डन टुलॉक** – गोर्डन टुलॉक का लोक चयन उपागम पर किया गया कार्य आरम्भिक दौर का है। नौकरशाही के स्वयं के लिए कार्य करना तथा राजनैतिक दलों के प्रतियोगिता एवं उसके परिणाम के प्रति उनकी कटु आलोचना ने नौकरशाही की शक्ति के खतरों व सार्वजनिक नीतियों के राजनीतिकरण के बहस के लिए आधार प्रदान किया है। उनके लिए राजनीति का अध्ययन, नीति की योजनाएं व नौकरशाही को उन्हीं मान्यताओं पर आधारित होना चाहिए, जो कि औद्योगिक फर्मों, औद्योगिक लोगों व उपभोक्ताओं के व्यवहार की व्याख्या में उपयोग में लाया जाए। इससे कुछ सामान्यीकरण उभर कर आते हैं –

- राजनैतिक दलों द्वारा चुनाव के दौरान मत प्राप्त करने के लिए अनेकों आश्वासन दिए जाते हैं।
- सत्ता में स्थापित राजनीतिज्ञों द्वारा अर्थव्यवस्था में हेर फेर कर चुनाव जीतने की अधिक कोशिश होती है।
- सार्वजनिक हित की अपेक्षा नौकशाही की शक्ति में वृद्धि स्वयं की सेवा से हुई है।
- उदारवादी लोकतंत्र की राजनैतिक प्रक्रिया, नौकरशाही व राजनैतिक शक्ति को नियंत्रित करने व निरीक्षण करने में अक्षम रही है।
- शासन में राजनीतिज्ञ अर्थव्यवस्था को चुनाव के पूर्व प्रोत्साहित व उसमें हेर फेर कर सकते हैं एवं चुनाव पश्चात् अर्थव्यवस्था की अपस्फीति (कम) कर सकते हैं (सरकार द्वारा चुनाव के पूर्व व पश्चात् खर्चों का परीक्षण)।

3. **लोक चयन उपागम पर जेम्स बुकानन** – लोक चयन उपागम के विद्वान तथा अर्थशास्त्र में नोबेल पुरुस्कार विजेता जेम्स बुकानन ने तर्क दिया कि व्यक्ति राजनीति में अपने पारस्परिक फायदे के लिए आते हैं, जैसे कि वे बाजार में भी साथ आते हैं। उनके अनुसार, ''दक्षता के बारे में अगर देखा जाए तो राजनीतिक निर्णयों के समय व्यक्ति समाज से सम्बन्धित अभूर्त वितरणात्मक विचारों के प्रति रुचि नहीं दिखाता है, बजाए इसके वे अपने ही हितों की ओर ध्यान देते हैं'', अतः बुकानन के अनुसार राजनीति में लोग स्वयं के हितों के लिए एक साथ आ जाते हैं। बुकानन के अनुसार, सार्वजनिक नीति निर्माण के आधार के रूप में लोग चयन उपागम के दो निर्देशात्मक नियम हैं – (1) विनिमय के रूप में राजनीति (2) आर्थिक संविधानवाद या संविदावाद। विनिमय के रूप में राजनीति में व्यक्तियों के मध्य व्यापार केवल सेब के बदले में नारंगी नहीं है, बल्कि राजनीति में कुछ लोग एक साथ तयशुदा पारस्परिक हितों के लिए आते हैं। उदाहरण के लिए पंचायत में एक तिहाई सीटों में महिलाओं के लिए आरक्षण या कुछ राज्यों में पचास प्रतिशत आरक्षण शायद उन सरकारों के साथ कुछ हित समूहों द्वारा विनिमय के तौर पर किया गया हो। अन्य निर्देशात्मक सिद्धांत आर्थिक संविधानावाद के अनुसार वर्तमान के संविधान या ढाँचे या नियम को समीक्षात्मक परीक्षण की आवश्यकता है अर्थात् संविधान में दिए गए प्रावधान आलोचनात्मक अवलोकन के लिए हैं। इसका बेहतरीन उदाहरण 2009 के शिक्षा के

अधिकार को लागू करना है। केवल आलोचनात्मक परीक्षण के कारण ही राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के द्वारा 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों को अनिवार्य व मुफ्त शिक्षा उपलब्ध कराने के गैर न्यायोचित प्रावधानों को वैधानिकता प्राप्त हो पाई।

4. **लोक चयन उपागम में एथोंनी डाउन्स के विचार –** लोक चयन उपागम में ऐथोनी डाउन्स का नौकरशाही के व्यवहार के अध्ययन से सम्बन्धित योगदान है। डाउन्स का प्रतिमान यह दर्शाता है कि कैसे नौकरशाही का विकास कानून के परिणाम के कारण होता है तथा कैसे नौकरशाही व उसके अधिकारियों की प्रेरणा से उनके हितों में वृद्धि होती है। डाउन्स ने अपनी पुस्तक 'इनसाइड ब्यूरोक्रेसी' ने अनुमान लगाया कि नौकरशाही में निर्णय की सूचना स्वहित के अनुसरण से होती है। डाउन्स ने तर्क दिया कि अधिकारियों के प्रेरणा विधि होते हैं जैसे शक्ति, पैसा, आय, प्रतिष्ठा, व्यक्तित्व, निष्ठा व सुरक्षा। उन्होंने नौकरशाहो का वर्गीकरण पाँच प्रकारों में किया गया है :

(क) आरोहक – ये शक्ति व प्रतिष्ठा से सम्बन्धित है। ऐसे नौकरशाह राजनीति व नौकरशाही में आगे बढ़ना चाहते हैं तथा वे मूल्यों, लोगों या किसी की भी परवाह नहीं करते हैं।

(ख) संरक्षक – ये परिवर्तन को कम करने की सोच रखते हैं। वे यथास्थिति बनाए रखना चाहते हैं व कार्य करने की पारम्परिक क्रिया को बनाए रखते हैं।

(ग) उग्रपंथी – ये अधिकारी अत्याधिक अभिप्रेरित होते हैं, किसी भी नीति या कार्यक्रम को करने के लिए तथा वे इसे अति उत्साह से परिपूर्ण होते हैं।

(घ) समर्थक – अपने कार्यालय के संसाधनों की बढ़ोतरी के लिए चिंतित होते हैं, फिर चाहे वो व्यक्तिगत या वित्तीय संसाधन हों।

(ड) राजनीतिज्ञ – इनमें सार्वजनिक हित की भावना होती है, जिसमें वृद्धि की जा सकती है ताकि वे अपने उद्देश्यों को पहचान सके।

5. **लोक चयन उपागम में विलियम निसकानॅन का योगदान –** निसकानॅन के द्वारा किया गया कार्य लोक चयन के अन्तर्गत नौकरशाही के अध्ययन के लिए किया गया व्यवस्थित प्रयास था। निसकॉनन ने अपनी पुस्तक नौकरशाही व प्रतिनिधि सरकार में तर्क दिया कि जो नौकरशाही में कार्य करते हैं, वे अपने बजट व कार्यालय में वृद्धि करना चाहते हैं। उन्होंने दावा किया कि केवल बजट में वृद्धि करके ही वे स्वयं के हितों में वृद्धि कर

सकते हैं। नौकरशाह या अधिकारियों की बुराइयों व विवेक को सीमित करने के लिए निसाकॉनन ने कुछ प्रतिबंधो को निर्धारित किया है :

- व्यवस्थापिका व कार्यपालिका के हस्तक्षेप से अधिकारियों पर सख्त नियंत्रण रखा जा सकता है।
- सार्वजनिक सेवा के लिए प्रतियोगिता में वृद्धि।
- अपव्यय को कम करने के लिए निजीकरण या संविदा।
- सार्वजनिक सेवा के लिए विकल्पों की उपलब्धता से सम्बन्धित सूचना का फैलाव।

6. **लोक चयन उपागम पर विंसेन्ट ओस्ट्राम के विचार –** विसेन्ट ओस्ट्राम लोक चयन उपागम के प्रमुख प्रस्तावक है तथा वे नौकरशाही प्रशासन के पारम्परिक सिद्धांत के बदले लोकतांत्रिक प्रशासन की वकालत करते हैं। लोकतांत्रिक प्रशासन अर्थात जनता के पास निर्णय लेने की शक्ति हो, ताकि उनकी मांगों को प्राथमिकता दी जाए। उन्होंने बताया कि नौकरशाही का ढाँचा आवश्यक है, परन्तु सार्वजनिक सेवा की आर्थिक उत्पादकता व प्रतिक्रिया के लिए यह पर्याप्त ढाँचा नही है। साथ ही उन्होंने तर्क दिया कि व्यक्तिगत प्राथमिकताओं के लिए सही ढाँचा केन्द्रीकृत नौकरशाही संस्थाएं नहीं है, बल्कि अत्याधिक खंडित व बहुसंगठनात्मक व्यवस्था है। अतः उनके अनुसार, विकेन्द्रीकरण से विविधता का निर्माण होता है, तथा नागरिकों के चयन के अधिक अवसर उपलब्ध होते हैं। उन्होंने आगे बताया कि विकेन्द्रीकरण का तात्पर्य विभिन्न वस्तु व सेवा के लिए विविध लोकतांत्रिक निर्णय निर्माण के ढाँचे का अस्तित्व है। ओस्ट्रोम सभी प्रशासनिक इकाइयों के विनौकरशाहीकरण का सुझाव देते हैं। उनके अनुसार, विकेन्द्रीकरण तथा लोकतंत्र कार्यक्षेत्र में सहभागिता तथा निचले स्तर तक लोगों के सशक्तिकरण को बढ़ावा देता है।

अपनी पुस्तक Intellectual Crisis in American Public Administration (1974) में औस्ट्रोम ने पारम्परिक लोक प्रशासन के केन्द्रीय मान्यताओं पर प्रश्न उठाए : (अ) राजनैतिक द्वैध शासन (ब) सभी सरकारों में एक केन्द्रशक्ति का स्त्रोत (स) पदसोपनयी व्यवस्था संगठनात्मक दक्षता में वृद्धि करता है। उन्होंने लोकतांत्रिक निर्णय निर्माण व्यवस्था की विविधता, प्रशासन में लोकप्रिय सहभागिता, बिखरी हुई प्रशासकीय सत्ता तथा विकेन्द्रीकृत संगठन की पेशकश की है। उन्होंने कुछ महत्वकांक्षाएं प्रस्तुत की हैं – (अ) लोकतांत्रिक

प्रशासन का विकेन्द्रीकृत प्रतिमान, (ब) संगठनात्मक प्रतियोगिता। सरकारी एजेंसियों के मध्य लोकतांत्रिक व बेहतर प्रतियोगिता को बढ़ावा देने के लिए सकारात्मक पदसोपानीय प्रशासनिक ढाँचे के स्थान पर बहुसंगठनात्मक व्यवस्था ज्यादा उचित है। (Basu, 2004)

7. कार्यलयीन प्रतिमान पर पैट्रिक डनलेवी के विचार – पैट्रिक डनलेवी द्वारा नौकरशाही के लोक चयन का परिष्कृत प्रतिमान प्रस्तुत किया गया, जिसे ब्यूरो का आकार देने वाला प्रतिमान कहा गया। यह प्रतिमान इस विचार को नकारता है कि नौकरशाही बजट को उच्चतर सीमा तक ले जाना चाहती हैं। बल्कि इसके विपरीत अधिकारीगण जहाँ बड़े संगठन का प्रबंधन करते हैं, वही वे राजनीतिज्ञों को सलाह–मशव्हरा देकर अपने परिस्थिति में वृद्धि करते हैं। (मेडुरी–Medury, 2016)

निष्कर्ष रूप में लोक चयन उपागम के विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई मुख्य सिफारिशें हैं (अ) संगठनात्मक सुधार, (ब) राज्य की भूमिका में तथा राजनीतिज्ञों की अतिबिशिष्ट शक्तियों में कटौती, (स) सरकार के एकाधिपत्य की शक्तियों में कटौती, (द) घाटे के बजट को चलाना व एक निश्चित स्तर से ज्यादा कर निर्धारण की राजनीतिज्ञों व लोकसेवक अधिकारियों की शक्तियों में संवैधानिक नियंत्रण द्वारा कटौती। नौकरशाही की सलाह देना, नियंत्रण तथा क्रियान्वयन कार्यों को जहाँ तक हो सके पृथक रखना चाहिए। नौकरशाही के आकार को कम करना, कार्यों के भार को कम करना, खर्चों को नियंत्रित करना तथा सार्वजनिक एजेन्सियों के मध्य प्रतियोगिता की भावना को बढ़ावा देना शामिल है। ये सामान्य सुझाव सभी लोक चयन विद्वानो द्वारा दिए गए हैं। (बासु – Basu, 2004)

7.5. अपनी प्रगति जांचे (Check your progress)

नीचे कुछ प्रश्न दिए गए हैं उनके उत्तर देने का प्रयास करें :–

(x) लोक चयन उपागम का आरम्भ कब से माना जाता है?

(xi) लोक चयन उपागम का सिद्धान्त किसने दिया?

(xii) इस उपागम को परिभाषित किसने किया?

(xiii) नौकरशाही से इस उपागम को किसने जोड़ा?

7.6. निष्कर्ष (Summary)

जैसे कि बुकानन का अनुमान है, लोक चयन ने सुसंगत समझ तथा हर जगह क्या प्रेक्षित होगा की व्याख्या पर व्यापक प्रभाव डाला है। सरकार की समस्याएँ या सरकार की नाकामी दिखती है एवं यह जानकारी भी प्राप्त होती है कि सरकार अपने वादों को पूरा

करने में असफल रही है। लोक चयन ने ऐसी समझ को आधार प्रदान किया है। इसी समय संपूर्ण विश्व में प्रयोग सिद्ध कार्य हो रहे हैं, जो कि बाजार के दुष्परिणाम को दर्शाते हैं। जिसने खंडन ही किया है न कि पूर्णतावादी समाधान प्रदान किया हो। मुख्य मुद्दा राज्य को कैसे लोकतांत्रिक व नागरिक सहयोगी बनाया जाए और उसे पृष्ठभूमि तक सीमित न किया जाए तथा नवनी बेहतर बाजार को स्थापित किया जाए।

इस इकाई में हमने लोक चयन उपागम की व्याख्या की है, जो राज्य व नौकरशाही के विरूद्ध एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण के रूप में उदित हुआ है। लोक चयन उपागम के अनुमान जैसे प्राविधिकी व्यक्तिवाद, राजनीति विनिमय के रूप में, संस्थात्मक बहुलवाद, बुद्धिपरक चयन आदि के बारे में बताया गया है। लोक चयन उपागम से सम्बन्धित, विचारधाराओं की चर्चा की गई है। हालांकि, इन विचारधाराओं का केन्द्रीय सिद्धांत राज्य व नौकरशाही का आलोचनात्मक दृष्टिकोण ही रहा है, इसके कारण व्यक्तिगत व सामूहिक चयन के लिए विचार प्रक्रिया तथा राज्य को नियंत्रित करने के तरीकों की शुरूआत हुई। प्रमुख योगदान कर्ताओ के प्रभावशाली कार्यों का वर्णन इस इकाई में किया गया है, जिसने नवीन सिद्धांतो जैसे लाभ बढ़ोतरी हेतु नीति जोड़ तोड़ की मांग, आर्थिक संविधानवाद, नौकरशाही के विभिन्न प्रकार आदि की जानकारी प्रस्तुत की है। इकाई में लोक चयन उपागम के संदर्भ में विभिन्न विद्यानों द्वारा किए गए आलोचनात्मक व्याख्या पर गहन चिन्तन किया गया है। जिसमें मुख्य लोक चयन उपागम की सीमायें है, जो कि मूल्य व नीति के प्रश्न व कार्यों के आधार पर राज्य की भूमिका के विकल्प के रूप में था।

7.7. सूचक शब्द (Key Words)

आत्मिक उन्नति, सामाजिक समझौता, तार्किक अवधारणा, व्यवस्थित व्यक्तिवाद

आत्मिक उन्नति – यह अवधारणा उद्देश्यपूर्ण स्थितियों के साथ सामाजिक समझौते पर आधारित है। इसका अर्थ है कि सामाजिक समझौते के अन्तर्गत व्यक्ति सही चयन करता है।

सामाजिक समझौता – यह अवधारण इस बात पर आधारित है कि एक पारिकालिय सामाजिक व्यक्ति सही चयन करता है।

तार्किक अवधारणा – इससे हमारा अभिप्राय व्यक्ति के तार्किक ज्ञान से है, जिसके माध्यम से व्यक्ति विशेष किसी भी तथ्य को तार्किक आधार पर समझकर निर्णय लेता है।

व्यवस्थित व्यक्तिवाद– यह अवधारणा समाज को एक सावयव के रूप में नहीं मानती। इसके अनुसार व्यक्ति विशेष किसी वस्तु का चयन करते समय भ्रामक होता है।

7.8 स्वयं मूल्यांकन हेतु प्रश्न (Self Assessment Questions) :-

1. लोक चयन उपागम से आप क्या समझते हैं?
2. प्राविधिकी व्यक्तिवाद को परिभाषित कीजिए।
3. राजनीति विनिमय के रूप में एक प्रतिमान की व्याख्या कीजिए।
4. लोक चयन उपागम की विभिन्न विचारधाराओं का उल्लेख कीजिए।
5. विसेंट–ओस्ट्रॅम का योगदान क्या है?

7.9. अपनी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर (Answer for check your progress):-

1. 1970 के दशक से।
2. विसेंट–ओस्ट्रॅम ने।
3. नट विकसेल।
4. गॉर्डन टुलॉक ने।

7.10. सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference):-

1. Public Administration, Mcgraw Hill : Laxmi Kant. M
2. New Horizons of Public Administration; Mohit Bhattacharya; Jawahar Publisher & Distribution.
3. Indian Administration; S.R. Maheshwari, Orient Black Swan.
4. Public Administration Theory and Practice; Hoshiar Singh and Pardeep Sachdeva; Pearson.
5. प्रशासनिक चिंतक; प्रसाद एण्ड प्रसाद सत्यनारायण; जवाहर पब्लिकेशन एण्ड डिस्ट्रीब्यूशन।

Subject : लोक प्रशासन	
Course Code :	Author :
Lesson No. : 8	Vetter :
विकास प्रशासन	

अध्याय – 8 विकास प्रशासन

8.1 अधिगम उद्देश्य (Learning Objectives)

8.2. प्रस्तावना (Introduction)

8.3. अध्ययन के मुख्य बिन्दु (Main Point of Text)

8.3.1 विकास प्रशासन का अर्थ

8.3.2. विकास प्रशासन की परिभाषाएं

8.4. पाठ के आगे का मुख्य भाग (Further Main Body of Text)

8.4.1. विकास प्रशासन की विशेषताएं

8.4.2. विकास प्रशासन का क्षेत्र

8.4.3. विकास प्रशासन का अध्ययन के तत्व

8.4.4. विकास प्रशासन के मॉडल

8.5. अपनी प्रगति जांचे (Check your progress)

8.6. सारांश (Summary)

8.7. सूचक शब्द (Key Words)

8.8. स्वयं मूल्यांकन हेतु प्रश्न (Self Assignment Questions)

8.9. अपनी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर (Answer for Check your progress)

8.10. सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference)

8.1 अधिगम उद्देश्य (Learning Objectives)

इस अध्याय में निम्नलिखित विषयों के बारे में समझाया गया है :–

- विकास प्रशासन का अर्थ, परिभाषा
- विकास प्रशासन की विशेषताएं
- विकास प्रशासन का क्षेत्र
- विकास प्रशासन के आवश्यक तत्व
- विकास प्रशासन के मॉडल

8.2. प्रस्तावना (Introduction)

मानव सदा से ही विकास के लिए प्रयासरत रहा है और प्रागैतिहासिक काल से आज तक का मानव इतिहास इस बात का द्योतक है। वास्तव में मानव की सभ्यता की कहानी उसके विकास की कहानी ही है। किन्तु आधुनिक काल में 'विकास' संभवतः सर्वाधिक प्रचलित शब्द है और ये कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि मानवता ने जितना विकास पिछली एक शताब्दी में किया है उतना ही विकास उससे पहले तक के अपने इतिहास में किया। इसमें भी पिछली सदी के पूर्वार्द्ध की अपेक्षा उत्तरार्द्ध में अधिक विकास हुआ। इसका एक कारण शायद ये रहा कि पिछली सदी में, और विशेष तौर पर दूसरे विश्व युद्ध के पश्चात्, विकास केवल व्यक्तिगत लक्ष्य ही नहीं रहा, अपितु राज्य ने भी इसमें सक्रिय भूमिका निभानी आरम्भ कर दी। एक अमेरिकी विद्वान ब्रान ने ठीक ही कहा है आज ''समस्त विश्व विकास की अवधारणा से प्रभावित है – इससे बचाव असंभव प्रतीत होता है।'' वास्तव में पिछली शताब्दी में 'विकास' सभी देशों का चाहे वे विकसित रहे हों या अल्पविकसित, एक प्रमुख लक्ष्य बन गया है और वर्तमान में सभी देश विकास की ओर अग्रसर हैं और विकसित होने की होड़ में एक दूसरे से आगे निकलना चाहते हैं। अल्पविकसित देश विकसित होना चाहते हैं जबकि अन्य देश जो अपेक्षाकृत अधिक विकसित हैं, अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए विकासोन्मुख हैं। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'विकास' विकसित देशों की अपेक्षा अल्पविकसित देशों के समक्ष अधिक बड़ी चुनौती है।

8.3. अध्ययन के मुख्य बिन्दु (Main Point of Text)

8.3.1. विकास प्रशासन का अर्थ : 'विकास प्रशासन' दो शब्दों 'विकास' तथा 'प्रशासन' के योग या मेल से बना है। जैसा कि हम देख चुके हैं 'कम वांछित परिस्थिति से

अधिक वांछित परिस्थितियों की ओर अग्रसर होने की प्रक्रिया' को विकास की संज्ञा देते हैं जबकि 'प्रशासन सरकार का कार्यात्मक पहलू है जिसका अभिप्राय सरकार द्वारा लोक–कल्याण तथा जन–जीवन को व्यवस्थित करने हेतु किये गये प्रयासों से हैं।

लोक प्रशासन के शब्दकोष के अनुसार ''एक देश, विशेषतौर पर उभरते हुए नए देशों, की प्रशासनिक क्षमता को बढ़ाने हेतु वहाँ पर प्रविधियों, प्रक्रियाओं तथा व्यवस्थाओं में सुधार या उन्नति'' को विकास प्रशासन कहते हैं।

8.3.2. विकास प्रशासन की परिभाषाएं : एडवार्ड वीडनर के अनुसार, ''विकास प्रशासन उन प्रगतिवादी राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक उद्देश्यों जो किसी न किसी रूप में आधिकारित स्तर पर निर्धारित होते हैं, को प्राप्त करने के लिए मार्गदर्शन की प्रक्रिया है।

जॉन मोण्टगोमरी के अनुसार, ''विकास प्रशासन का तात्पर्य अर्थव्यवस्था (जैसे की कृषि या उद्योग या इन दोनों में से किसी से भी सम्बन्धित पूंजीगत आधारिक संरचना) तथा कुछ सीमा तक राज्य की समाज सेवाओं (विशेषतया शिक्षा और लोक स्वास्थ्य) में नियोजित परिवर्तन लाना है। सामान्यतः राजनैतिक योग्यताओं में सुधार करने के प्रयासों से इसका सम्बन्ध नहीं होता।''

फेनसोड ने विकास प्रशासन को परिभाषित करते हुए ''इसे नवीन मूल्यों का वाहक बताया है। ''उनके अनुसार, ''विकास प्रशासन में वे सभी कार्य सम्मिलित होते हैं जो विकासशील देशों ने आधुनिकीकरण एवं औद्योगिकीकरण के मार्ग पर चलने के लिए ग्रहण किए हैं या अपनाएं हैं। प्रायः विकास प्रशासन में संगठन और साधन सम्मिलित हैं जो नियोजन आर्थिक विकास तथा राष्ट्रीय आय का प्रसार करने हेतु साधन जुटाने और उनके आबंटन के लिए स्थापित किए जाते हैं।''

रिग्स के अनुसार, ''विकास प्रशासन को दो परस्पर सम्बन्धी रूपों में प्रयुक्त किया जाता है। प्रथम, विकास प्रशासन का सम्बन्ध विकास कार्यक्रमों को लागू करने से, बड़े संगठनों, विशेष तौर पर सरकारों, के द्वारा प्रयुक्त प्रणालियों, नीतियों और उन नीतियों के विकासवादी उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु बनाई गई योजनाओं के कार्यान्वयन से हैं दूसरे, अप्रत्यक्ष रूप में प्रशासनिक क्षमताओं में वृद्धि लाना भी इसके अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है।

8.4. पाठ के आगे का मुख्य भाग (Further Main Body of Text)

8.4.1. विकास प्रशासन की विशेषताएं (Characteristics of Development Administration) : उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम विकास प्रशासन की कुछ विशेषताओं का उल्लेख कर सकते हैं। विकास प्रशासन की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन नीचे किया जा रहा है :–

1. **परिवर्तनोन्मुखी** – विकास प्रशासन की पहली प्रमुख विशेषता यह है कि यह परिवर्तनोन्मुखी प्रशासन है अर्थात् समय–समय पर आवश्यकताओं के अनुरूप अपने कार्यक्रमों, नीतियों एवं योजनाओं में परिवर्तन लाता रहता है। विकास प्रशासन राष्ट्र के चहुमुखी विकास के लिए कुछ कार्यक्रम बनाता है तथा उन्हें लागू करता है। क्रियान्वयन के पश्चात् विकास प्रशासन कार्यक्रमों का विश्लेषण करता है जिसके आधार पर उन कार्यक्रमों में वांछित परिवर्तन किए जाते हैं। साथ ही एक उद्देश्य के पूरा होने पर विकास प्रशासन अपने लिए दूसरे लक्ष्य निर्धारित कर लेता है। अतः परिवर्तन विकास प्रशासन का अर्न्तनिहित गुण है और यदि विकास प्रशासन परिवर्तनोन्मुखी नहीं होगा तो यह अर्थहीन हो जाएगा।

2. **उद्देश्योन्मुखी** – विकास प्रशासन की दूसरी प्रमुख विशेषता यह है कि विकास प्रशासन उद्देश्य परक है अर्थात् विकास प्रशासन अपने समक्ष कुछ लक्ष्य या उद्देश्य बनाता है जिन्हें वह एक समय सीमा के अन्तर्गत प्राप्त करने के लिए कुछ कार्यक्रम तथा योजनाएँ भी बनाता है। उदाहरण के तौर पर भारत में विकास प्रशासन अपने समक्ष अनेकों उद्देश्य लेकर चलता हैं जैसे कि गरीबी उन्मूलन, बेरोजगारी दूर करना, आर्थिक विषमताओं को दूर करना, ग्रामीण विकास, कृषि विकास, औद्योगिक विकास महिला एवं बाल विकास आदि। वास्तव में विकास एक विवेकशील प्रक्रिया है इसलिए स्वाभाविक ही है कि विकास प्रशासन भी तर्कयुक्त एवं विवेकशील होगा और एक विवेकशील प्रक्रिया के लिए यह आवश्यक है कि उसके कुछ लक्ष्य हों जिन्हें वह एक समय सीमा में प्राप्त करने के लिए प्रयास करें।

3. **परिणामोन्मुखी** – विकास प्रशासन केवल उद्देश्य निर्धारित करने, उन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कार्यक्रम बनाने तथा उन्हें लागू करने तक ही सीमित नहीं है। अपितु यह प्रशासन ये जानने का भी प्रयास करता है कि विकास के इन कार्यक्रमों के लागू होने से अभीष्ट परिणाम निकले अथवा नहीं। अर्थात् विकास प्रशासन अपने प्रयासों का

सतत् रूप से विश्लेषण करता रहता है और अपने प्रयासों के परिणामों पर ध्यान केन्द्रित रखता है। यदि आवश्यकता हो तो विकास प्रशासन विश्लेषण के आधार पर प्राप्त परिणामों के मद्देनजन अपने कार्यक्रमों में आवश्यक परिवर्तन भी करता है।

4. **लोचशीलता** – विकास प्रशासन विकासशील देशों से सम्बन्धित है और विकासशील देश विकसित होने के लिए प्रयास कर रहे हैं अर्थात् वे विकास के दौर से गुजर रहे हैं। इस कारण इन देशों में सतत् या लगातार परिवर्तन हो रहे हैं। उनकी समस्याओं में भी लगातार परिवर्तन आ रहे हैं। उदाहरण के तौर पर भारत में जो समस्याएं 1950 के दशक में थी वे वर्तमान शताब्दी में नहीं है; उन समस्याओं का स्थान दूसरी समस्याओं ने ले लिया है क्योंकि विकास प्रशासन इन समस्याओं के अनुरूप अपने उद्देश्य निर्धारित करता है तथा कार्यक्रम बनाता व लागू करता है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि विकास प्रशासन लोचशील रहे।

5. **नियोजित विकास** – किसी भी देश में किसी भी समय समस्याएं असीमित होती है तथा संसाधन सीमित और यह तथ्य विकासशील देशों के सन्दर्भ में और भी सत्य हैं। अतः विकास प्रशासन, जो अपने समक्ष विकासशील देशों के चहुमुखी विकास का उद्देश्य लेकर चलता है, के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि संसाधनों के सर्वथा उचित तथा सर्वोत्तम प्रयोग के लिए योजनाबद्ध रूप से विकास करें।

6. **सृजनात्मक** – सृजन का तात्पर्य है 'नये विचारों का विकास करना तथा उन्हें लागु करना।' यदि इस रूप में देखा जाए तो विकास प्रशासन सृजनात्मक है। विकास प्रशासन सदैव ही प्रयासरत रहता है कि अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिए वह कौन से कार्यक्रम अपनाए जिससे कि उन उद्देश्यों की पूर्ति कम से कम समय तथा कम से कम संसाधनों के द्वारा की जा सके। इस की पूर्ति के लिए विकास प्रशासन सदैव ही प्रविधियों, पद्धतियों, संस्थाओं, प्रणालियों, संरचनाओं, कार्यों, व्यवहारों, नीतियों, कार्यक्रमों योजनाओं आदि के साथ नये–नये प्रयोग करता रहता है तथा उन प्रयोगों में सफलता मिलने पर उन्हें व्यापक, स्तर पर लागू भी करता है। उदाहरण के तौर पर भारत में विकास प्रशासन ने स्वतन्त्रता के पश्चात् गरीबी हटाने, बेरोजगारी उन्मूलन तथा ग्रामीण विकास के सन्दर्भ में कार्यक्रमों, पद्धतियों, प्रणालियों, संरचनाओं आदि में अभी तक अनेकों प्रयोग किए हैं। ये सभी भारत में विकास प्रशासन की सृजनात्मक प्रकृति के द्योतक हैं।

7. सहभागी प्रशासन – विकास प्रशासन की प्रकृति सहभागिता पर आधारित है। अर्थात् विकास प्रशासन अपने कार्यक्रमों के सफल क्रियान्वयन के लिए जन सहयोग को बढ़ावा देता है। वास्तव में कोई भी प्रशासन अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु जन सहभागिता पर आधारित होता है और विकास प्रशासन कोई अपवाद नहीं है। भारत में ग्रामीण विकास के लिए सन् 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम लागु किया गया किन्तु ग्रामीण विकास की दिशा में सरकार का यह प्रयास असफल रहा। बलवन्तराय मेहता समिति, जो कि इन कार्यक्रमों के मूल्यांकन के लिए गठित की गई थी, ने बताया कि इन कार्यक्रमों की असफलता का कारण इनमें जनसहभागिता का अभाव था। इस समिति ने यह भी सुझाव दिया कि जब तक सहभागिता को सुनिश्चित नहीं किया जाएगा, विकास की दिशा में कोई भी प्रयास सफल नहीं होगा।

8. प्रबन्धकीय कार्यकुशलता – विकास प्रशासन केवल राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक विकास हेतु ही लक्ष्य नहीं बनाता अपितु वह विकास प्रशासन में लगे कार्मिक एवं अधिकारियों की क्षमताएं बढ़ाने का भी प्रयास करता है ताकि विकास कार्यक्रमों को सफलता एवं कार्यकुशलता के साथ लागु किया जा सके। यह विकास प्रशासन की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। क्योंकि यदि विकास प्रशासन से सम्बन्धित कार्मिक एवं अधिकारी कार्यकुशल नहीं होंगे तो विकास प्रशासन कितने भी अच्छे कार्यक्रम क्यों न बनाए, वे कार्यक्रम इच्छित या अभीष्ट परिणाम नहीं दे पाएंगे तथा समय व संसाधनों दोनों का ही अपव्यय होगा जो कि एक विकासशील देश किसी भी अवस्था में नहीं चाहेगा। अतः विकास प्रशासन का एक प्रमुख लक्ष्य अपने कार्मिकों तथा अधिकारियों की कार्यकुशलता में वृद्धि करना होता है।

9. जन आकांक्षाओं के अनुरूप – विकास प्रशासन सदैव ही अपने लाभार्थियों की आकांक्षाओं एवं इच्छाओं को केन्द्र बिन्दु बनाकर चलता है तथा अपने जो भी कार्यक्रम बनाता है वह जन आकांक्षाओं को ध्यान में रखकर बनाता है। जब विकास प्रशासन जन आकांक्षाओं के अनुकूल कार्य नहीं करता है अथवा जन आकांक्षाओं के अनुरूप विकास कार्यक्रम नियोजित एवं क्रियान्वित नहीं करता है, तो विकास प्रशासन को उसका मूल्य चुकाना पड़ता है तथा वह कार्यक्रम असफल सिद्ध होता है। उदाहरण के तौर पर भारत में विकास प्रशासन के अनेको कार्यक्रमों की असफलता सिद्ध होती है। उदाहरण के तौर पर

भारत में विकास प्रशासन के अनेको कार्यक्रमों की असफलता का एक प्रमुख कारण उन कार्यक्रमों में जन आकांक्षाओं एवं अभिलाषाओं का समावेश न होना था।

10. आर्थिक विकास महत्वपूर्ण घटक – विकास प्रशासन बहुउद्देशीय है अर्थात् इसके विभिन्न आयाम या घटक हैं जैसे कि राजनैतिक विकास, सामाजिक विकास, मानवीय विकास, आर्थिक विकास, सांस्कृतिक विकास आदि। साथ ही विकास प्रशासन को इन सभी आयामों में सन्तुलन बना कर भी चलना होता है अन्यथा विकास असंतुलित होगा। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि विकास प्रशासन के लिए सबसे महत्वपूर्ण आयाम आर्थिक विकास है। इसका कारण यह है कि आर्थिक विकास अन्य सभी विकास की आधारशिला है एवं आर्थिक विकास के अभाव में अन्य विकास अर्थहीन हो जाते हैं। उदाहरणार्थ यदि एक व्यक्ति की आधारभूत आवश्यकताएं (रोटी, कपड़ा और मकान) की पूर्ति नहीं होती तो राजनैतिक विकास (अधिकारों एवं कर्त्तव्यों का बोध आदि) अर्थहीन हो जाते हैं। इसी प्रकार एक व्यक्ति का सामाजिक स्तर उसकी आर्थिक सम्पन्नता पर निर्भर करता है।

इसी प्रकार कोई भी देश आर्थिक दृष्टि से समृद्ध हुए बिना शक्तिशाली नहीं बन सकता। एक देश को अपने अस्तित्व के लिए आर्थिक रूप से समृद्ध एवं सम्पन्न बनना आवश्यक है। ''इसलिए विकास प्रशासन ऐसे प्रशासनिक संगठन की रचना करता है जो देश की आर्थिक प्रगति को संभव बनाता है तथा आर्थिक विकास के लिए मार्ग प्रस्तुत करता है।''

यदि हम भारत में विकास कार्यक्रमों पर नजर डालें तो यह स्थिति और भी स्पष्ट हो जाती है। अतः ग्रामीण विकास के लिए जितने भी कार्यक्रम प्रशासन द्वारा बनाए गए उन सभी का मुख्य उद्देश्य ग्रामीणों को आर्थिक रूप से समृद्ध बनाना रहा है। किन्तु हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि आर्थिक पहलू के अन्य पहलुओं से महत्वपूर्ण होने का तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि विकास के अन्य पहलू अर्थहीन हो जाते हैं।

8.4.2. विकास प्रशासन का क्षेत्र : व्यवहारिक रूप से विकास प्रशासन के क्षेत्र में वे सभी गतिविधियाँ सम्मिलित की जाती हैं जो कि एक देश के प्रशासन के द्वारा उस देश के विकास के लिए सम्पन्न की जाती है। अतः विकास प्रशासन के क्षेत्र के अन्तर्गत वे सभी गतिविधियाँ आती है जो सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, औद्योगिक, कृषि, मानवीय, प्रशासनिक आदि क्षेत्रों से सम्बन्धित है एवं सरकार द्वारा संचालित हों। किन्तु इस प्रकार से विकास प्रशासन के क्षेत्र को परिभाषित करने का कोई भी प्रयास वैज्ञानिक रूप में

सफल नहीं हो सकेगा। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि विकास प्रशासन के क्षेत्र की कुछ सीमाएं निर्धारित की जाएं। सुविधा की दृष्टि से विकास प्रशासन के क्षेत्र को निम्नलिखित बिन्दुओं की सहायता से वर्णित किया जा रहा हैं :–

1. **राष्ट्र निर्माण और सामाजिक गठबंधन/संसर्ग –** अपने उपनिवेशों में लोगों को संगठित होकर साम्राज्यवादी सत्ता को चुनौती देने से रोकने के लिए साम्राज्यवादी शक्तियों ने दमनकारी नीति अपनाने के साथ–साथ और भी कई हत्थकण्डे अपनाए। इनमें से एक प्रमुख था 'फूट डालो और राज करो।' इसके परिणामस्वरूप साम्राज्यवादी शक्तियों ने अपने उपनिवेशों में लोगों में सामाजिक असहिष्णुता की भावना फैलाई तथा उन्हें अनेकों आधारों पर बाँटकर आपस में लड़वा दिया ताकि इन उपनिवेशों के लोग असंगठित रहे और साम्राज्यवादी सत्ता और उसके द्वारा किए जा रहे शोषण को चुनौती देने के बारे में उन्हें सोचने का अवसर ही न मिले। उदाहरण के तौर पर आजादी से पूर्व अंग्रेजों ने भारत की जनता को धर्म, जाति, प्रदेश आदि अनेकों आधारों पर बांटकर आपस में लड़वा दिया। फलस्वरूप दूसरे विश्व युद्ध की समाप्ति के पश्चात् एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के नव–स्वतन्त्र राष्ट्रों को धार्मिक–सामाजिक तथा सांस्कृतिक असहिष्णुता विरासत में मिली। इसलिए इन नव–स्वतन्त्र राष्ट्रों के समक्ष न केवल आर्थिक विकास की समस्या थी अपितु राष्ट्र निर्माण व सामाजिक गठबन्धन या संसर्ग भी एक प्रमुख चुनौती थी जो कि विकास प्रशासन के क्षेत्र का एक अभिन्न अंग बन गया। विभिन्न नव–स्वतन्त्र या विकासशील देशों के प्रशासन ने पाया कि वहाँ का समाज अनेको आधारों पर बंटा हुआ था और वहां पर पुराने व संकुचित सामाजिक सम्बन्ध, जो कि भाई–भतीजावाद, जाति, धर्म, क्षेत्रवाद आदि से प्रभावित थे, विद्यमान थे। किन्तु इस प्रकार के सामाजिक सम्बन्ध राष्ट्र–निर्माण में बाधक होते हैं। इसलिए विकास प्रशासन इन सामाजिक संरचनाओं को तोड़कर नई संरचनाएँ गठित करता है। साथ ही विकास प्रशासन विभिन्न वर्गों के मध्य सामाजिक–धार्मिक तनाव दूर करके सामाजिक सद्भावना लाने का प्रयास करता है ताकि एक स्वच्छ एवं स्वस्थ समाज का निर्माण हो सके।,

2. **विकासात्मक नियोजन –** किसी भी अर्थव्यवस्था में सदैव ही संसाधन सीमित होते हैं तथा समस्याएं असीमित। यह तथ्य विकासशील देशों के सन्दर्भ में और भी अधिक सटीक है। क्योंकि विकासशील देश एक ओर जहाँ तकनीक और प्रौद्योगिकी के अभाव में अपने संसाधनों का समुचित दोहन नहीं कर पाते वहीं दूसरी ओर उनके समक्ष समस्याएं भी

अधिक होती है। अतः यह नितान्त आवश्यक हो जाता है कि विकास प्रशासन सीमित संसाधनों तथा समय के समुचित उपयोग के लिए नियोजित विकास की शरण ले। अतः विकास प्रशासन समस्याओं समाधान के हेतु प्राथमिकताएँ निर्धारित करता है और के संसाधनों की उपलब्धता के अनुसार उन्हें संसाधन आवंटित करता है दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि विकासात्मक नियोजन विकास प्रशासन का एक प्रमुख कार्य है तथा उसके क्षेत्र के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है।

3. **विकास कार्यक्रम** – विभिन्न क्षेत्रों (सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक आदि) में निर्धारित उद्देश्यों के सन्दर्भ में विकास योजनाओं को लागू करने के लिए विकास प्रशासन अनेक कार्यक्रम तैयार करता है तथा उन्हें लागू करता है। अतः विकास कार्यक्रम भी विकास प्रशासन के क्षेत्र का अभिन्न अंग है। यदि हम भारत के परिप्रेक्ष्य में देखें तो भारतीय प्रशासन ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् से आज तक विभिन्न वर्गों के विकास के लिए अनेकों कार्यक्रम चलाए है। इन कार्यक्रमों में समाज के विभिन्न वर्गों को लक्ष्य बनाया गया तथा उनके विकास के लिए कार्य किया गया। उदाहरण के तौर पर सुखा सम्भावित क्षेत्रीय कार्यक्रम, कमाण्ड क्षेत्र विकास कार्यक्रम, पर्वतीय विकास कार्यक्रम, जनजाति विकास कार्यक्रम आदि क्षेत्रीय विकास के कार्यक्रम है। सघन कृषि क्षेत्रीय कार्यक्रम, समग्र कृषि विकास कार्यक्रम, अधिक उपज किस्म कार्यक्रम आदि कृषि उत्पादन के सम्बन्धित कार्यक्रम है। ग्रामीण निर्माण कार्यक्रम, ग्रामीण रोजगार के लिए सघन कार्यक्रम, काम के बदले अनाज कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, ग्रामीण युवाओं के लिए स्वरोजगार प्रशिक्षण, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम, जवाहर रोजगार योजना प्रधानमंत्री रोजगार योजना, स्वर्णजयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना, सम्पूर्ण ग्राम रोजगार योजना आदि ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार उपलब्ध करवाने तथा गरीबी दूर करने के उद्देश्य से चलाये गये कार्यक्रम है।

4. **संस्था निर्माण** – विकास प्रशासन की गतिविधियां केवल योजनाओं, नीतियों व कार्यक्रमों के निर्माण तक ही सीमित नहीं है अपितु इनका सफल एवं प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन भी विकास प्रशासन का उत्तरदायित्व है। विकास नीतियों, योजनाओं व कार्यक्रमों को लागू करने के लिए विकास प्रशासन को कुछ संरचनाओं की आवश्यकता होती है। इस उद्देश्य से विकास प्रशासन सर्वप्रथम पहले से विद्यमान संस्थाओं का सहारा लेता है। कई बार ये संस्थाए विकास कार्यक्रमों को लागू करने में सहायक होती है। किन्तु अनेकों अवसरों

पर विकास प्रशासन को इन संस्थाओं में कुछ आवश्यक परिवर्तन भी करने पड़ते हैं ताकि ये संस्थाए विकास कार्यक्रमों के सफल क्रियान्वयन में सहायक बन सकें। इसके अतिरिक्त कई बार विकास प्रशासन को सर्वथा नई संस्थाए भी स्थापित करनी पड़ती हैं क्योंकि वर्तमान विद्यमान संस्थाएं किसी या किन्हीं विशेष विकास कार्यक्रम या कार्यक्रमों के प्रभावपूर्ण कार्यान्वयन में सहायक सिद्ध नहीं हो पाती। उदाहरण के तौर पर भारत में विकास प्रशासन ने स्वतन्त्रता प्राप्ति से अब तक अनेकों विकास कार्यक्रम बनाए तथा लागू किए और इन कार्यक्रमों के उद्‌देश्यों की प्राप्ति व उनके प्रभावी कार्यान्वयन के लिए अनेक संस्थागत परिवर्तन किए गए। इसके अतिरिक्त प्रशासन ने आवश्यकता पड़ने पर कई बार नई संस्थाओं का भी निर्माण किया। ग्रामीण विकास के उद्‌देश्य की प्राप्ति के लिए प्रत्येक जिले अन्तर्गत खण्ड स्तरीय प्रशासनिक ढ़ांचे का निर्माण इसका एक उदाहरण है। इसी प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए बनाए एवं लागू किए जाने वाले सभी कार्यक्रमों में समन्वय लाने के लिए जिला स्तर एक पर संस्था जिला ग्रामीण विकास अभिकरण (DRDA) का गठन किया गया है इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि संस्था निर्माण भी विकास प्रशासन का एक महत्वपूर्ण कार्य है एवं इसके क्षेत्र में सम्मिलित किया जाता है।

5. पर्यावरण का अध्ययन – तुलनात्मक प्रशासनिक समूह (CAG) के विद्वानों द्वारा किये गये अध्ययनों से यह सिद्ध हो गया कि विकास प्रशासन और उसके सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक पर्यावरण के मध्य सतत् रूप से अन्तःक्रिया होती है तथा दोनों एक दूसरे को गहनतम रूप से प्रभावित करते हैं। अतः विकास प्रशासन की प्रविधियां, पद्धतियां, व्यवहार तथा संरचनाएं इसके पर्यावरण से प्रभावित होते हैं। इसके साथ ही इन अध्ययनों से यह निष्कर्ष भी निकला कि कोई भी प्रशासनिक संस्था या विकास कार्यक्रम जो एक विशेष पर्यावरण (सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, संवैधानिक, राजनैतिक आदि) में प्रभावपूर्ण रहा है और अभिष्ट फल दे रहा है, आवश्यक नहीं कि यदि उसी रूप में उस कार्यक्रम या संस्था को दूसरे पर्यावरण में स्थापित किए जाने पर वह इच्छित परिणाम दे और सफल रहे। इसलिए यह आवश्यक है कि विकास प्रशासन किसी अन्य देश या पर्यावरण के सफल परीक्षणों को अपनाने से पहले दोनों व्यवस्थाओं की परिस्थितिकी का अध्ययन करे। अतः पर्यावरण या सन्दर्भ या परिस्थितकी का अध्ययन विकास प्रशासन का एक महत्वपूर्ण व अभिन्न अंग है तथा विकास प्रशासन के क्षेत्र के अन्तर्गत इसके अध्ययन को आवश्यक रूप से सम्मिलित किया जाता है।

6. प्रबन्धकीय क्षमता का विकास एवं प्रशासनिक सुधार – प्रो. रिग्स के अनुसार विकास प्रशासन के दो महत्वपूर्ण आयाम है। पहला, विकास प्रशासन उस प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है जिसके द्वारा प्रशासन सामाजिक सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनैतिक परिवर्तनों का संचालन करता है। दूसरा, यह प्रशासनिक प्रक्रियाओं, पद्धतियों संरचनाओं, कार्यप्रणालियों, व्यवहारों आदि का भी अध्ययन करता है। पहले आयाम को 'विकास के प्रशासन' तथा दूसरे को 'प्रशासनिक विकास' की संज्ञा दी गई है। अतः प्रशासनिक विकास अर्थात् विकास की समस्याओं के निवारण तथा बदलती हुई परिस्थितियों में प्रशासनिक पद्धतियों, कार्यवाहियों, प्रणालियों, व्यवहारों, प्रक्रियाओं, संरचनाओं आदि में यथेचित परिवर्तन लाना विकास प्रशासन का महत्वपूर्ण भाग है। यदि विकास प्रशासन प्रशासनिक विकास को नजरअंदाज करता है तो विकास प्रशासन को इसका मूल्य अपने विकास कार्यक्रमों की असफलता के रूप में चुकाना पड़ता है क्योंकि यदि प्रशासनिक अधिकारी, उनका व्यवहार, कार्यप्रणालियों तथा नियम, संरचनाएँ आदि विकास की आवश्यकताओं के अनुकूल नहीं होंगे तो विकास कार्यक्रम भले ही कितने भी युक्तिसंगत तथा प्रभावपूर्ण क्यों न हो, अभीष्ट परिणाम नहीं दे पायेंगें। इससे संसाधनों तथा समय दोनों की ही बर्बादी होगी जिसे कि एक विकासशील देश को रोकने का हर संभव प्रयास करना चाहिए। अतः विकास प्रशासन को विकास का प्रभावशाली यन्त्र बनाने के लिए प्रशासनिक पदाधिकारियों के दृष्टिकोण में प्रशासकीय संगठनों संरचनाओं के व्यवहार में तथा प्रशासन के ढांचे में सतत् रूप से परिवर्तन की प्रक्रिया जारी रखना अति आवश्यक है। इसलिए लिए उन प्रशासकीय पदाधिकारियों जो कि सामाजिक–सांस्कृतिक, आर्थिक व राजनैतिक विकास की प्रक्रिया में अहम भूमिका निभाते हैं को समय–समय पर दृष्टिकोण प्रशिक्षण (Orientation Training) प्रदान करवाने की आवश्यकता होती है। इसके साथ–साथ प्रशासन की प्रक्रिया एवं प्रविधियों को भी सरल एवं विवेकपूर्ण (Rational) बनाना आवश्यक है ताकि वह सकारात्मक परिवर्तन (विकास) की प्रक्रिया में बाधक न बने अपितु सहायक बने। अतः प्रशासनिक विकास भी विकास प्रशासन के अध्ययन क्षेत्र का महत्वपूर्ण अंग है।

7. मानवीय तत्व या पक्ष का अध्ययन – विकास प्रशासन के क्षेत्र में मानवीय पक्ष का अध्ययन अपरिहार्य है क्योंकि लोक प्रशासन और इसलिए विकास प्रशासन का उद्देश्य 'सेवा करना' (To Serve) है। यू ंतो सभी प्रशासन के अध्ययन क्षेत्र में मानवीय तत्व का अध्ययन अवश्यंभावी है किन्तु विकास प्रशासन में इस तत्व का महत्व और भी बढ़ जाता है

क्योंकि यह (विकास प्रशासन) अधिक संवेदनशील है। विकास प्रशासन को अनेकों बार समाज के उन नागरिकों के लिए कार्यक्रम बनाने तथा लागू करने होते हैं जो कि बाकि समाज से पिछड़े हुए हैं। जैसे कि भारत में विकास प्रशासन के लाभार्थियों में महिला एवं शिशु, अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के लोग, पिछड़ी जातियों या वर्गों के लोग सम्मिलित है। ऐसे वर्गों को सेवित करने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि विकास प्रशासन की प्रणाली तथा कार्यवाहियाँ मानवतापूर्ण हों। इसलिए ''विकास प्रशासन में विविध समस्याओं को हमें मानवीय व्यवहार के परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिए। इस प्रकार हम इसके अन्तर्गत सामाजिक मानक, मूल्यों, व्यवहार, विचारों आदि का अध्ययन करते हैं।''

8. जन–सहभागिता – कोई भी प्रशासन जनसहभागिता के अभाव में अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह प्रभावपूर्ण तरीके से नहीं कर सकता और विकास प्रशासन इसका अपवाद नहीं है। उदाहरणार्थ पुलिस प्रशासन जनसहयोग के अभाव में अपराधियों और कानून तोड़ने वालों को पकड़ने में असुविधा का अनुभव करता है व अपराधों को रोकने में पूरी तरह प्रभावी नहीं हो पाता। इसी प्रकार विकास प्रशासन भी जन सहयोग और जन–सहभागिता के अभाव में अपने विकास कार्यक्रमों को पूरी तत्परता से लागू नहीं कर पाता है। यदि विकास कार्यक्रमों का निर्माण करते समय जन–सहभागिता को सुनिश्चित नहीं किया जाता तो जनता उन कार्यक्रूमों को लागू करवाने में कोई सहयोग नहीं देती जिससे कि ये कार्यक्रम असफल हो जाते हैं। दूसरी ओर यदि कार्यक्रमों को बनाते समय लोगों की आकांक्षाओं को ध्यान में रखा जाता है तथा उनके सहयोग से इनका निर्माण किया जाता है तो लोगों में ये भावना रहती है कि ये कार्यक्रम उनके अपने हैं तथा वे उन कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक लागू करवाने में पूरा सहयोग देते हैं जिससे कि कार्यक्रम अभिष्ट परिणाम देते हैं। आरम्भ में भारत में विकास प्रशासन ने विकास कार्यक्रमों में जन–सहभागिता को अवांछित समझा और इन कार्यक्रमों के बनाने तथा लागू करने में जनसहयोग नहीं लिया। इसी कारण अनेकों विकास कार्यक्रम इच्छित परिणाम नहीं दे पाए। किन्तु पिछले कुछ समय से विकास प्रशासन ने विकास कार्यक्रमों के सफल क्रियान्वयन के लिए जन–सहभागिता के महत्व को समझते हुए अनेक विकास कार्यक्रमों में जन–सहयोग को बढ़ावा दिया है इसका ज्वलंत उदाहरण है ''स्वजल धारा''। यह कार्यक्रम ग्रामीण क्षेत्रों में पीने का पानी उपलब्ध करवाने के लिए चलाया जा रहा है। इस योजना के अन्तर्गत ग्रामीणों को अपने गाँव में पीने का पानी उपलब्ध करवाने के लिए स्वयं योजना बनानी है

तथा कुल लागत का 90 प्रतिशत हिस्सा स्वयं देना है जबकि 10 प्रतिशत भाग केन्द्रीय सरकार के द्वारा वहन किया जाता है।

8.4.3. विकास प्रशासन के अध्ययन के तत्व : विभिन्न विकासशील देशों के विकास प्रशासन पर दृष्टिपात करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि विकास प्रशासन कहीं अधिक सफलतापूर्वक कार्य कर रहा है तो कहीं कम सफलतापूर्वक इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कुछ आवश्यक तत्व हैं जो कि विकास प्रशासन की सफलता के लिए आवश्यक हैं और जिनके अभाव विकास प्रशासन अभीष्ट परिणाम नहीं दे पाता। अब प्रश्न यह उठता है कि वह कौन सी परिस्थितियाँ या तत्व हैं जो कि विकास प्रशासन की सफलता के लिए आवश्यक हैं। नीचे हम इन आवश्यक तत्वों या परिस्थितियों का वर्णन कर रहे हैं।

1. पर्याप्त संसाधन – विकास प्रशासन की सफलता के लिए पर्याप्त संसाधनों का पाया जाना आवश्यक है। प्रायः संसाधन को दो प्रकारों में बांटा जाता है – भौतिक संसाधन तथा मानवीय संसाधन। विकास प्रशासन की सफलता के लिए दोनों का समुचित मात्रा में पाया जाना आवश्यक है। भौतिक संसाधनों के अभाव में विकास प्रशासन विकास योजनाओं को लागू नहीं कर सकता क्योंकि हर योजना को लागू करने हेतू संसाधनों की आवश्यकता होती है। उदाहरण के तौर पर विकास प्रशासन महिला व बाल विकास से सम्बन्धित योजना बनाता है जिसमें महिलाओं को प्रसूतिपूर्व व नवजात शिशुओं को पूरक पोषाहार देने की व्यवस्था की गई हो। किन्तु प्रशासन इस योजना को तब तक लागू नहीं कर सकता जब तक कि समुचित मात्रा में खाद्य पदार्थ उपलब्ध न हों। दूसरी ओर मानवीय संसाधनों की उपलब्धता भौतिक संसाधनों की अपेक्षा अधिक आवश्यक है क्योंकि यह मानव ही है जो किसी भी संरचना को चलाता है। भले ही कितनी अच्छी योजना क्यों न बनाई गई हो और भौतिक संसाधन भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हों किन्तु यदि विकास प्रशासन के संसाधनों का मानवीय पक्ष अयोग्य है तो वह योजना कभी भी वांछित परिणाम नहीं देगी। विलोमतः यदि मानवीय संसाधन योग्य और तकनीकी रूप में प्रशिक्षित हैं तो एक बुरी योजना और संसाधनों के अभाव के पश्चात् भी अच्छे परिणाम मिल सकते हैं।

सामान्यतः विकासशील देशों में मानवीय संसाधन प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं किन्तु तकनीकी रूप से प्रशिक्षित मानवीय संसाधनों का अभाव पाया जाता है। साथ ही इन देशों के समक्ष एक अन्य समस्या यह रहती है कि इन देशों के द्वारा काफी संसाधन जुटा कर तकनीकी प्रशिक्षण संस्थान खोले जाते हैं और तकनीकी शिक्षा का प्रबन्ध किया जाता है

किन्तु तकनीकी शिक्षा ग्रहण करके अनेक प्रशिक्षित युवक व युवतियाँ विकसित देशों में पलायन कर जाते हैं। मानव संसाधनों के सम्बन्ध में ये समस्याएं भारत सहित सभी विकासशील देशों के समक्ष आती हैं। इसी कारणवश विकास प्रशासन अधिकतर विकासशील देशों में पूरी तरह से सफल नहीं हो पा रहा है।

2. **उन्नत प्रौद्योगिकी –** विकास के लिए उन्नत प्रौद्योगिकी का पाया जाना नितान्त आवश्यक है। उन्नत प्रौद्योगिकी के अभाव में विकास प्रशासन सफलतापूर्वक कार्य नहीं कर पाता और इच्छित परिणाम नहीं दे पाता। उन्नत प्रौद्योगिकी के विकास के लिए निरन्तर 'शोध एवं विकास' (Research & Development – R & D) की आवश्यकता होती है जिसके लिए इन देशों के पास भौतिक तथा मानवीय दोनों ही संसाधनों का अभाव होता है। अतः इन देशों को उन्नत प्रौद्योगिकी के लिए विकसित देशों पर निर्भर रहना पड़ता है। किन्तु विकसित देश प्रौद्योगिकी के हस्तान्तरण के साथ–साथ विकासशील देशों पर कुछ शर्ते भी लगा देते हैं जो कि स्वाभाविक रूप से विकसित देश के लिए लाभकारी होती हैं तथा विकासशील देश के लिए अहितकारी। अनेकों बार ये शर्तें भी विकासशील देशों के विकास में बाधा बनती हैं। दूसरे, तेजी से परिवर्तित होते वर्तमान युग में प्रौद्योगिकी की आयु मात्र 3–5 वर्ष रह गई है अर्थात् हर 3 से 5 वर्ष के पश्चात् वर्तमान तकनीकें व प्रौद्योगिकी बेकार हो जाती है और उसका स्थान नई और अधिक उन्नत प्रौद्योगिकी ले लेती है। किन्तु विकासशील देशों में शोध एवं विकास संस्थानों (Research & Development Institutes) के अभाव में प्रौद्योगिकी के नवीकरण (Renoation) के लिए प्रयोग नहीं हो पाते इसलिए जो प्रौद्योगिकी इन देशों ने विकसित देशों से प्राप्त की थी वह जल्द ही बेकार (Outdated) हो जाती है क्योंकि नई प्रौद्योगिकी उसका स्थान ले लेती है। परिणामस्वरूप विकास प्रशासन अभीष्ट परिणाम नहीं दे पाता।

3. **बेहतर समन्वय –** समन्वय किसी भी संगठन का पहला सिद्धान्त है और विकास प्रशासन के संगठन इसके अपवाद नहीं है। समन्वय के अभाव में विकास प्रशासन अपनी नीतियों, योजनाओं व कार्यक्रमों को प्रभावी तरीके से लागू नहीं कर पायेगा। यदि समन्वय का अभाव होगा तो धन, समय व श्रम सभी की हानि होगी। विकास प्रशासन के क्षेत्र में समन्वय का महत्व और भी बढ़ जाता है क्योंकि इसे समाज के अनेको ऐसे वर्गों के विकास के लिए योजनाएं एवं कार्यक्रम बनाने पड़ते हैं जो एक से ज्यादा सामाजिक वर्गों का भाग होते हैं। उदाहरण के तौर पर महिला एवं बाल विकास, विधवा कल्याण, युवा

कल्याण, हरिजन कल्याण, ग्राम विकास आदि कुछ कल्याण कार्यक्रम हैं जो समाज के विभिन्न वर्गो से सम्बन्धित हैं। किन्तु साथ ही ये सभी वर्ग आपस में एक दूसरे से परस्पर जुड़े हैं। जैसे कि कुछ युवा महिलाएं विधवा होंगी, हरिजन जाति से होंगी तथा ग्रामीण क्षेत्र में वास करती होंगी। यदि इन सभी वर्गों के कल्याण से सम्बन्धित विभिन्न विभागों में परस्पर समन्वय का अभाव होगा तो इससे मूल्यवान साधनों का अपव्यय होगा।

4. **बेहतर संचार व्यवस्था** – प्रभावी संचार प्रणाली किसी भी प्रशासनिक व्यवस्था की जीवन रेखा होती है। विकास कार्यक्रमों के उद्देश्यों को लाभार्थियों तक पहुँचाने तथा उन कार्यक्रमों के बारे में लाभार्थियों की प्रतिक्रियाएं जानने की प्रक्रिया की प्रभावपूर्णता वास्तव में संचार व्यवस्था की प्रभावपूर्णता पर निर्भर करती है। प्रभावी संचार व्यवस्था के अभाव में विकास कार्यक्रमों के निर्धारित लक्ष्यों को प्रशासनिक अधिकारियों को प्रेषित नहीं किया जा सकता जिसके कारण विकास योजनाओं एवं कार्यक्रमों के बारे में लाभार्थियों के अनुभव एवं योजनाओं एवं कार्यक्रमों का क्रियान्वयन त्रुटिपूर्ण रहता है। इसके अतिरिक्त इन योजनाओं एवं कार्यक्रमों के बारे में लाभार्थियों के अनुभव तथा प्रतिक्रियाएँ (Feedback) भी विकास प्रशासन के पास नहीं पहुंच पाते। उपयुक्त प्रतिक्रियाओं (Feedback) के अभाव में भविष्य में बनाए जाने वाले विकास कार्यक्रमों व योजनाओं के उद्देश्य या लक्ष्य निर्धारण की प्रक्रिया भी त्रुटिपूर्ण रहती है और जब किसी योजना या कार्यक्रम के उद्देश्य ही त्रुटिपूर्ण होंगे तो उसके परिणाम भी स्वभाविक रूप से वांछित व अभीष्ट नहीं होंगे। अतः हम कह सकते हैं कि उपयुक्त एवं प्रभावी संचार व्यवस्था का पाया जाना विकास प्रशासन की सफलता के लिए एक पूर्वशर्त है।

5. **जन सहभागिता** – जन सहभागिता के अभाव में कोई भी प्रशासन अपने उद्देश्यों को प्राप्त नहीं कर सकता और यह बात विकास प्रशासन के ऊपर भी समान रूप से लागू होती है। विकास कार्यक्रमों का निर्माण जनता के हित के लिए होता है। इसलिए इनके निर्माण तथा क्रियान्वयन दोनों ही स्तरों पर जनता की भागीदारी आवश्यक हो जाती है और इसके अभाव में विकास कार्यों में सफलता प्राप्त करना सम्भव नहीं है। प्रशासनिक निर्णयों एवं गतिविधियों में जन–सहभागिता का आधारभूत दर्शन यह है कि जो निर्णय व्यक्ति के जीवन को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं उन निर्णयों के सम्बन्ध में उस व्यक्ति की प्रतिक्रियाएं जानना व इन प्रतिक्रियाओं का उन निर्णयों में यथासम्भव समावेश करना आवश्यक है क्योंकि प्रत्येक प्रशासनिक निर्णय लोगों के जीवन को प्रत्यक्ष या

अप्रत्यक्ष रूप से गहरे से प्रभावित करता है। अतः इन प्रशासनिक निर्णयों में लोगों की भागीदारी आवश्यक हो जाती है। योजनाएँ तथा कार्यक्रम बनाने के स्तर पर जन भागीदारिता का सबसे बड़ा लाभ शायद यह होता है कि इससे इन कार्यक्रमों–योजना को बनाने के स्तर पर लोगों की भागीदारी का अन्य लाभ यह भी होता है कि लोग उस कार्यक्रम को स्वयं अपना समझते हैं तथा उसके क्रियान्वयन में भी भागीदारी होते हैं। इससे लाभार्थी तथा प्रशासन दोनों ही लाभान्वित होते हैं। एक ओर जहां इस योजना–कार्यक्रम के कार्यान्वयन में भ्रष्टाचार में कमी आती है और वह प्रभावी तरीके से सम्पादित होता है वहीं दूसरी ओर इस कार्यक्रम या योजना के कार्यान्वयन का निरीक्षण एवं परीक्षण सम्बन्धी कार्य भी कम हो जाता है। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि विकास कार्यक्रमों में जन सहभागिता से जनता तथा प्रशासन दोनों ही लाभान्वित होते हैं। विकास कार्यक्रमों में जन सहभागिता का महत्व वी. सुब्राह्मणयन की इन पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है ''किसी भी कार्यक्रम की सफलता लोगों और विशेष तौर पर उस कार्यक्रम के लाभार्थियों, उस कार्यक्रम के प्रति दृष्टिकोण या रूझान पर निर्भर करती है।''

6. **लोचशील कानून और नियम** – विकास प्रशासन के सफल एवं प्रभावी होने के लिए एक अन्य पूर्वशर्त यह है कि कानूनों तथा नियमों में पर्याप्त लोचशीलता होनी चाहिए तथा प्रशासनिक पदाधिकारियों को पर्याप्त स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि वे इन कानूनों व नियमों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर सके। ऐसा इसलिए आवश्यक है क्योंकि विकास कार्यक्रमों को लागू करते समय प्रशासनिक पदाधिकारियों को अनेकों बार ऐसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है जो सर्वथा नवीन होती हैं तथा जिनके बारे में पहले से सोचकर कानूनों एवं नियमों में प्रावधान नहीं किया जा सकता। यदि ये नियम और कानून कठोर होंगे और उनमें लोचशीलता का अभाव होगा तो प्रशासनिक पदाधिकारियों को किसी भी नवीन परिस्थिति के पैदा होने पर जो कि विकास प्रशासन की प्रकृति को देखते हुए बहुत ही स्वभाविक है निर्णय लेने से पहले समर्थ प्राधिकारी से अनुमति लेनी होगी। इससे लालफीताशही को बढ़ावा मिलेगा, अकारण देरी होगी तथा विकास प्रशासन कम प्रभावी बनेगा।

7. **स्थिर राजनैतिक व्यवस्था** – स्थिर राजनैतिक व्यवस्था का पाया जाना विकास प्रशासन के प्रभावी होने की एक अन्य पूर्व शर्त है। राजनैतिक अस्थिरता के समय में राजनैतिक कार्यपालिका प्रशासन को निर्देश देने व नीति निर्धारण की अपेक्षा अपना अधिक

ध्यान सत्ता में बने रहने पर देती है। यह बात अध्यक्षीय व्यवस्थाओं की अपेक्षा संसदीय प्रणाली वाले देशों में अधिक लागू होती है क्योंकि संसदीय प्रणाली में संसद के निचले सदन में बहुमत खोने की स्थिति में सरकार को त्यागपत्र देना पड़ता है। अतः संसदीय प्रणाली वाले देशों में सरकार के सत्ताहीन होने का खतरा अपेक्षाकृत अधिक बना रहता है। इसके साथ ही अस्थिरता के दौर में जब सरकारें बार–बार परिवर्तन होती रहती हैं तो नीतियों में भी बार–बार परिवर्तित होता है जिससे कि विकास प्रशासन प्रतिकूल रूप में प्रभावित होता है।

साथ ही अन्य सभी प्रशासन की तरह विकास प्रशासन में भी नौकरशाही कार्य करती है और नौकरशाही की सभी विशेषताएँ विकास प्रशासन में भी पाई जाती हैं। नौकरशाही की एक प्रमुख विशेषता यह है कि वो 'एक अच्छी सेवक है किन्तु एक बुरी स्वामी है' (Bureaucracy is a good servant but a bad master) अतः अस्थिरता के दौर में राजनैतिक निर्देशन का अभाव हो जाता है जिससे कि विकास प्रशासन में कार्य करने वाले प्रशासनिक पदाधिकारी सेवक की अपेक्षा स्वामी अधिक बन जाते हैं और उसी प्रकार व्यवहार करते हैं। इससे विकास प्रशासन की प्रभावपूर्णता प्रतिकूल रूप से प्रभावित होती है।

उपरोक्त से स्पष्ट हो जाता है कि विकास प्रशासन का सफल या प्रभावी होना वास्तव में कुछ आवश्यक तत्वों या पूर्व शर्तों के ऊपर निर्भर करता है और इन पूर्व शर्तों के अभाव में विकास प्रशासन प्रभावी तरीके से कार्य नहीं कर पाता। किन्तु खेद का विषय यह है कि अधिकांश अल्पविकसित देशों में ये आवश्यक तत्व या पूर्वशर्तें पूरी नहीं होती और इसलिए वहां विकास प्रशासन अप्रभावी रहता है जिसके परिणामस्वरूप ये देश अल्पविकसित ही रह जाते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि अल्पविकसित या विकासशील देश अल्पविकास के दुश्चक्र में फंसे हुए हैं।

8.4.4. विकास प्रशासन के मॉडल : विभिन्न विकासशील देशों में विकास लाने हेतु विकास प्रशासन के द्वारा परिस्थिति अनुसार अलग–अलग मॉडल अपनाए जाते हैं। विकास प्रशासन के द्वारा अपनाए जाने वाले प्रमुख मॉडल निम्नलिखित हैं –

1. Diffusion Model – Diffusion मॉडल विकास प्रशासन को समाजशास्त्र के देन है। रोर्जस तथा एडारी समाजशास्त्र में इस मॉडल के प्रमुख प्रस्तावक हैं। एडारी तृतीय विश्व के देशों में विकास की प्रक्रिया की व्याख्या इस सिद्धान्त की सहायता से करते हैं। एडारी के अनुसार विकासशील देश विकास की जिस प्रक्रिया से गुजर रहे हैं या गुजरेंगे,

विकसित देश उस प्रक्रिया से पहले ही गुजर चुके हैं। इस प्रक्रिया में विकसित देशों ने अनेकों समस्याओं का सामना किया और उनके समाधान निकाले। अतः विकसित देशों ने विकास की प्रक्रिया में अनेक अनुभव प्राप्त किए। एडारी के अनुसार विकसित देशों के ये अनुभव विकासशील देशों की विकास की प्रक्रिया में बहुत लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं इसलिए विकासशील देशों को इन अनुभवों को अपनाना चाहिए।

एडारी के अनुसार विकासशील देशों में विकास की प्रक्रिया निम्न तीन बातों पर निर्भर करती है :—

(क) पश्चिम के औद्योगिक देश विकासशील देशों के विकास कार्यक्रमों में निवेश के लिए ऋण तथा अनुदान के रूप में पूँजी उपलब्ध करवायें।

(ख) विकासशील देश कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन की आधुनिक तकनीकें अपनायें।

(ग) विकासशील देश पश्चिम के औद्योगिक देशों के मूल्यों तथा व्यवहार पद्धतियों को अपनाएं।

एडारी की उपरोक्त व्याख्या से स्पष्ट हो जाता है कि वे विकासशील देशों के द्वारा पश्चिम के औद्योगिक देशों का अनुकरण करने की सिफारिश करते हैं। किन्तु इस मॉडल की इस आधार पर आलोचना की जा सकती है कि यह मॉडल परिस्थितिकीय विचारधारा (Ecological Viewpoint) के सिद्धान्त के विरूद्ध है। परिस्थितिकीय विचारधारा के अनुसार हर संरचना या संस्था का अपना एक पर्यावरण (राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि) होता है जिसमें कि वह फलीभूत होती है और यदि उस संरचना या संस्था का किसी अन्य स्थान पर इसके पर्यावरण की उपेक्षा करते हुए प्रत्यारोपण किया जाए तो यह आवश्यक नहीं कि वह संरचना अभीष्ट फल दे।

2. Human Need Cantred Development Model — Production Centred Development Model की आलोचना इस आधार पर की जाती है कि यह मॉडल मनुष्य की आधारभूत आवश्यकताओं की उपेक्षा करता है तथा निवेश पर लाभ (Return on Investment) को अधिकतम करने हेतु वस्तुओं और सेवाओं के अधिकाधि उत्पादन पर बल देता है। इसके परिणाम स्वरूप साधन–सम्पन्न तथा साधनविहीन लोगों के मध्य की खाई (Gap between Haves and Havenots) बहुंत अधिक बढ़ जाती है। Production Centered Development Model की मानवीय पक्ष की उपेक्षा करने के कारण आलोचना की जाती है।

इस मॉडल के इस दोष के कारण संगठन में मानवीय पहलू के पक्षधर सामाजिक वैज्ञानिकों ने विकल्प के रूप में Human Needs Centrel Development मॉडल का विकास किया। यह मॉडल आधारभूत मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति को महत्व देता है। इस मॉडल का केन्द्र–बिन्दु मानव हैं न कि वस्तुएँ। अतः यह मॉडल मानव–प्रधान तथा लोचशील है।

इस मॉडल के अन्तर्गत प्रशासन से यह अपेक्षा की जाती है कि वह आधारभूत मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के एक प्रमुख अभिकरण (Agent) की भूमिका निभाये तथा ऐसी व्यवस्था प्रतिपादित करे जिसमें लोगों की आवश्यकताओं का प्रभावी तरीके से विश्लेषण किया जा सके तथा उन आवश्यकताओं की पूर्ति भी की जा सके। इस मॉडल के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताओं की पहचान की जाती है और तदनुपरान्त इन आवश्यकताओं का प्राथमिकीकरण (Priortisation) किया जाता है। प्राथमिकीकरण करने के बाद इन आवश्यकताओं को नियोजन के लक्ष्यों तथा उद्देश्यों के रूप में परिवर्तित कर दिया जाता है। इस प्रकार मानवीय आवश्यकताओं का नियोजन में विलय हो जाता है। इसके पश्चात् योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए जो कार्यक्रम बनाए जाते हैं उनमें भी लोगों की सहभागिता सुनिश्चित की जाती है। वस्तुत इस मॉडल के अन्तर्गत सम्पूर्ण प्रशासनिक प्रक्रिया सहभागितापूर्ण (Participationry) बन जाती है और कार्यक्रमों एवं योजनाओं के निर्माण में लोगों की भागीदारिता को बढ़ावा दिया जाता है। अतः इस मॉडल के अन्तर्गत मानवीय पहलू को महत्व दिया जाता है और लोगों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है।

3. Sustainable Development Model – सामान्यतः विकास के विभिन्न Model की इस आधार पर आलोचना की जाती है कि वे विकास को केवल वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं। विकसित होने की होड़ में भौतिक संसाधनों का दोहन नियोजित तरीके से नहीं किया जाता। अधिकतर मॉडल अदूरदर्शितापूर्ण कार्यवाही करते हुए पर्यावरण के अविवेकपूर्ण क्षरण (degradation) के भविष्य में होने वाले दुष्परिणामों की उपेक्षा कर देते हैं। वास्तव में अधिकांश देशों में पर्यावरण को एक ऐसे संसाधन के रूप में देखा जा रहा है जिसका उपयोग एवं दोहन सर्वथा निजी लाभ के लिए किया जा सकता है।

विभिन्न पर्यावरणविद विकास की इस अवधारणा एवं प्रक्रिया को लक्ष्य बनाते है तथा इसकी गम्भीर आलोचना करते हुए इसके दूरगामी परिणामों की ओर चेताते हैं। इसी आधार पर Sustainable Development Model का उदय हुआ। इस मॉडल का मूल दर्शन यह तर्क

है कि हमने अपने पूर्वजों से प्राकृतिक धरोहर के रूप में जो कुछ प्राप्त किया है, यदि अधिक नहीं तो न्यूनतम उतना तो हमें अपनी संततियों (Future Generations) को अवश्य ही देना चाहिए। यह मॉडल प्राकृतिक संसाधनों के उचित प्रबंधन और संरक्षण पर बल देता है। इस मॉडल के अनुसार हमें विकास और परिवर्तन की प्रक्रिया को इस प्रकार संचालित करना चाहिए कि वर्तमान और भविष्य दोनों में ही मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति सुनिश्चित हो सके। अर्थात् हमें प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग इस विवेकपूर्ण तरीके से करना चाहिए कि वर्तमान में हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति होने के साथ–साथ आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए भी प्राकृतिक सम्पदा सुरक्षित रह सके। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि विकास के अन्य Model जो कि प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करते समय केवल वर्तमान सन्दर्भ को ध्यान में रखते हैं, Sustainable Development Model वर्तमान के साथ–साथ भविष्य पर भी नजर रखता है। इसलिए यह मॉडल अधिक दूरदर्शितापूर्ण है। वास्तव में यह मॉडल लोगों की विचारधारा में परिवर्तन लाने की बात करता है और उनमें प्राकृतिक सम्पदा के विवेकपूर्ण प्रयोग की दिशा में जागरूकता लाने का प्रयास करता है।

4. Gandhian Model of Development – यद्यपि महात्मा गांधी ने विकास के सम्बन्ध में अलग से कोई सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं किया तथापि भिन्न–भिन्न स्थानों पर विकास के सम्बन्ध में उन्होंने अपने जो विचार प्रकट किए उन्हें मिलाकर एक विचारधारा का रूप दिया गया है जिसे हम विकास के गाँधीवादी मॉडल की संज्ञा देते हैं। गांधी जी सत्ता के केन्द्रीकरण के पक्षधर नहीं थे। उन्होंने राजनीति सत्ता को प्राप्ति का माध्यम बताते हुए इसकी आलोचना की और कहा कि इसमें समर्पण के साथ सेवा करने की भावना का अभाव पाया जाता है। गाँधी जी राज्य रूपी सत्ता के शनैः शनैः किन्तु अन्ततः समाप्ति (Progressive withering away of the State) के पक्षधर थे।

गाँधीजी वास्तविक संघीय लोकतन्त्र चाहते थे जिसमें कि गाँव आधारभूत इकाई हो। गाँधीजी विकास के अन्तर्गत आर्थिक परिवर्तन को महत्व देते थे लेकिन साथ ही वे बड़े स्तर पर उत्पादन के विरूद्ध थे। इसकी अपेक्षा गांधीजी लघु एवं कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देना चाहते थे। उनका विचार था कि इस प्रकार की विकास की प्रक्रिया से आर्थिक विषमता या भेदभाव नहीं पनपता। साथ ही गांधी जी ने विकास के सन्दर्भ में निम्न बातों पर बल दिया –

(क) कृषि तथा उद्योगों पर आधारित स्वावलम्बी ग्रामीण अर्थव्यवस्था।

(ख) सीमित आवश्यकताओं पर आधारित अर्थव्यवस्था।

(ग) संघीय (Trusteeship) अर्थव्यवस्था।

गांधीजी का विचार था कि सीमित आवश्यकता आधारित अर्थव्यवस्था व्यक्तित्व के चहुमुखी विकास का साधन बनती है तथा हमें भ्रष्टाचार और पक्षपातपूर्ण व्यवहार जैसे दोषों से भी मुक्ति दिलाती है। उनके अनुसार शिक्षा नैतिक तथा भौतिक दोनों ही प्रकार के विकास का सशक्त माध्यम है। विकास के बारे में गांधीजी के विचारों से प्रभावित होकर ही भारत प्रधानमन्त्री के श्री मनमोहन सिंह ने भारत में विकास लाने के लिए पूर्व में गाँधीवादी विचारधारा को अपनाने का सुझाव दिया था।

5. Dependency Model of Development – इस मॉडल के प्रणेता फ्रैन्क के अनुसार तृतीय विश्व के देशों की गरीबी का प्रमुख कारण इन देशों की पर–निर्भनता है। उनका मानना है कि वास्तव में पर–निर्भरता की एक जंजीर (chain) बनी हुई है जो कि दुनिया के अधिक विकसित देशों से अल्पविकसित देशों की ओर चलती है। अर्थात् अल्पविकसित देश अपने से अधिक विकसित देशों पर निर्भर हैं, जो कि अपने से और अधिक विकसित देशों पर निर्भर है।

Dependency Model of Development के प्रमुख प्रस्तावकों कारडोसो तथा फालैटो अर्जेन्टाइना, पैरू, चिल्ली, ब्राजील आदि अल्पविकसित देशों में फैली गम्भीर गरीबी का प्रमुख कारण इन देशों के ऊपर पश्चिम के औद्योगिक देशों के राजनैतिक–आर्थिक प्रभावों को मानते हैं। इन विद्वानों ने तीसरी दुनिया के अल्पविकसित देशों में औद्योगिक विकास के अभाव के लिए इन अर्थव्यवस्थाओं के पास संसाधनों की कमी तथा अतिरिक्त उत्पादन (Surplus Production) के अभाव के अलावा इन देशों की पश्चिम के विकसित देशों के ऊपर निर्भरता को माना है। विकासशील देशों के विकसित होने के लिए यह मॉडल कुछ सिफारिशें करता है जो निम्न प्रकार हैं :–

(क) विकासशील देशों को पूंजीपती देशों के साथ अपने सम्बन्ध विच्छेद करने होंगे।

(ख) इसके लिए यह आवश्यक है कि ये देश, विशेषतौर पर यहां का कामगार वर्ग (working class) को सर्वप्रथम अपने ही देश धनाढ़य वर्ग (Elite Class) को समाप्त करे और तत्पश्चात् पूंजीवादी को चुनौती दे।

(ग) इन देशों को चाहिए कि वे एक दूसरे के सहायतार्थ अपने ही बीच अर्थात् तृतीय विश्व के देशों के मध्य एक प्रभावशाली औद्योगिक आधार स्थापित करें तथा आपसी सहयोग और गठबन्धन की नीति अपनायें।

अतः स्पष्ट हो जाता है कि यह मॉडल असमानों (Dislike) के बीच निर्भरता के स्थान पर समानों (Likes) के बीच परस्पर निर्भरता और सहायता का वातावरण बनाने का पक्षधर है क्योंकि इस मॉडल के अनुसार, आसमानों के मध्य परस्पर निर्भरता (Mutual Dependence) नहीं होती और जहां परस्पर निर्भरता नहीं होती वहां शोषण होता है अर्थात् अधिक विकसित के द्वारा कम विकसित का शोषण किया जाता है।

6. Altatnative Model of Development – अपनी प्रमुख पुस्तक "Small is Beautiful" में शूमेकर ने इस मॉडल का प्रतिपादन किया है। यह मॉडल तृतीय विश्व के देशों में स्वावलम्बी तथा लघुस्तरीय तकनीकी व्यवस्थाओं की स्थापना की सिफारिश करता है। इस मॉडल की आधारभूत मान्यता, जो इसे अन्य Models से भिन्न करती है, वो यह कि तृतीय विश्व के देशों का औद्योगिकरण वर्तमान में औद्योगिकृत देशों के गैर–औद्योगिकरण (de-industrialisation) से ही सम्भव पाएगा। इसलिए यह मॉडल सन्तुलन भंग किये बिना ही विकासशील देशों को विकसित करने के लिए इन देशों में लघु उद्योगों के फैलाव की सिफारिश करता है।

शूमेकर ने 1961 में भारत आकर यहाँ विकास की प्रक्रिया का अध्ययन किया तथा भारत सरकार को अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करते हुए भारत में लघु–उद्योग लगाने पर बल दिया ताकि ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ती हुई बेरोजगारी की समस्या को हल किया जा सके। इसी आधार पर बाद में अपनी पुस्तक में उन्होंने इस मॉडल का प्रतिपादन किया।

यह मॉडल तृतीय विश्व में औद्योगिक विकास को नियन्त्रित करने की सिफारिश इस आधार पर करता है कि इन देशों की काफी समस्याएँ विकसित देशों की अनुपयुक्त तकनीक को अपने यहाँ अविवेकपूर्ण तरीके से लागू करने की देन हैं।

8.5. अपनी प्रगति जांचे (Check your progress)

नीचे कुछ प्रश्न दिए गए हैं उनके उत्तर देने का प्रयास करें :–

(i) विकास प्रशासन शब्द पहली बार कब प्रयोग किया गया?

(ii) विकास प्रशासन का जन्मदाता किसे माना जाता है?

(iii) विकास प्रशासन किन शब्दों से मिलकर बना है?

(iv) विकास प्रशासन का अनिवार्य गुण क्या है?

(v) विकास प्रशासन तथा प्रशासनिक विकास को समझाने के लिए मुर्गी और अण्डे शब्दों का प्रयोग करना क्या उचित है?

8.6. निष्कर्ष (Summary) – विकास प्रशासन सरकार के वैकासिक कार्यों, कार्यक्रमों, योजना तथा परियोजनाओं पर जोर देता है, जिससे आज प्रत्येक शासन व्यवस्था के लिए यह अपरिहार्य हो गया है। विकास प्रशासन विकास के लिए प्रशासन का निर्माण है। भारत में स्वतन्त्रता से पूर्व विकास प्रशासन नहीं था। यही कारण है कि हमने आजादी के बाद पंचवर्षीय योजनाओं को विकास का माध्यम बनाया एवं विकास करने हेतु अनेक नई संस्थाओं, विभागों एवं नए प्रकार के अधिकारियों–कर्मचारियों को देश में बढ़ावा दिया है। विकास प्रशासन ने विकास एवं देश की उन्नति में आने वाली समस्याओं एवं इनके निदान के आवश्यक उपायों का व्यापक विश्लेषण किया है। इसके पूर्व विकास एवं कल्याण सरकारी कार्य क्षेत्र में नहीं आते थे। अग्रलिखित बिन्दुओं से विकास प्रशासन की प्रासंगिकता एवं उपादेयता (महत्त्व) सिद्ध होती है :

1. विकास प्रशासन से लोक प्रशासन के सिद्धान्त (विषय के रूप में) एवं व्यवहार (प्रशासन का क्रियान्वयन पक्ष) के विकास में उल्लेखनीय परिवर्तन आए हैं। इससे लोक प्रशासन के क्षेत्र में लोकनीति, मानवाधिकार, सतत् विकास एवं समावेशी विकास आदि महत्वपूर्ण घटकों का प्रवेश हुआ है।
2. कार्यरत प्रशासकों एवं शिक्षाविदों के लिए इसका प्रत्यक्ष महत्त्व है। चूँकि ये ही विकास की समस्याओं एवं विकास प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न समस्याओं में प्रत्यक्ष रूप से उलझे हैं।
3. विकास प्रशासन ने विकास के पश्चिमी प्रतिमान की अपर्याप्तताओं की ओर सफलतापूर्वक ध्यान आकृष्ट किया है जिससे विकास हेतु स्वजात प्रयासों को बल एवं सफलता मिली है।
4. विकास प्रशासन के आधार पर ही आज विभिन्न विकासशील देश तीव्र गति से आगे बढ़ रहे है। चीन तथा भारत की विकास दर आज 9 से 10 प्रतिशत की रफ्तार से बढ़ रही है। सभी ब्रिक्स देशा (यह ब्राजील, रूस, भारत, चीन तथा दक्षिण अफ्रीका का विकास हेतु बना संगठन है) में विकास प्रशासन ने महत्वपूर्ण कार्य किया है।

8.7. सूचक शब्द (Key Words)

विकास प्रशासन, प्रशासनिक विकास, परिवर्तनशील प्रशासन, जन सहभागिता

विकास प्रशासन – विकास प्रशासन से हमारा अभिप्राय विकास कार्यों के लिए किए गए प्रशासनिक प्रबन्ध से है।

प्रशासनिक विकास – प्रशासनिक विकास से हमारा अभिप्राय प्रशासनिक संस्थाओं के विकास से है, जिसमें प्रशासनिक संस्थाओं में सुधार किया जाता है।

परिवर्तनशील प्रशासन – परिवर्तनशील प्रशासन से हमारा अभिप्राय प्रशासन की उन प्रवृत्ति से है जिसमें प्रशासन समाज की आवश्यकता के अनुसार अपनी कार्य–प्रणाली में सुधार करने का प्रयास करता है।

जन सहभागिता – प्रशासनिक कार्यों में जन सहभागिता होना अनिवार्य है क्योंकि प्रशासनिक कार्यों को लागु करने तथा उनका feedback के बाद जन सहभागिता के माध्यम से है। प्रशासन की कमियों को सुधारा जा सकता है।

8.8 स्वयं मूल्यांकन हेतु प्रश्न (Self Assessment Questions) :-

10. विकास प्रशासन की विशेषताओं को समझाइए।
11. विकास प्रशासन के क्षेत्र की व्याख्या कीजिए।
12. विकास प्रशासन के मॉडल कौन–कौन से हैं?
13. विकास प्रशासन के आवश्यक तत्वों की व्याख्या कीजिए।

8.9. अपनी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर (Answer for check your progress):-

10. 1955 में
11. जॉर्ज गाट को
12. विकास तथा प्रशासन
13. परिवर्तनशीलता
14. टिग्स ने

8.10. सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference):-

1. Public Administration, Mcgraw Hill : Laxmi Kant. M
2. New Horizons of Public Administration; Mohit Bhattacharya; Jawahar Publisher & Distribution.
3. Indian Administration; S.R. Maheshwari, Orient Black Swan.
4. Public Administration Theory and Practice; Hoshiar Singh and Pardeep Sachdeva; Pearson.
5. प्रशासनिक चिंतक; प्रसाद एण्ड प्रसाद सत्यनारायण; जवाहर पब्लिकेशन एण्ड डिस्ट्रीब्यूशन।